Researches about Islamic Saints

Taftishul Auliya

तफ़्तीश-उल-औलीया

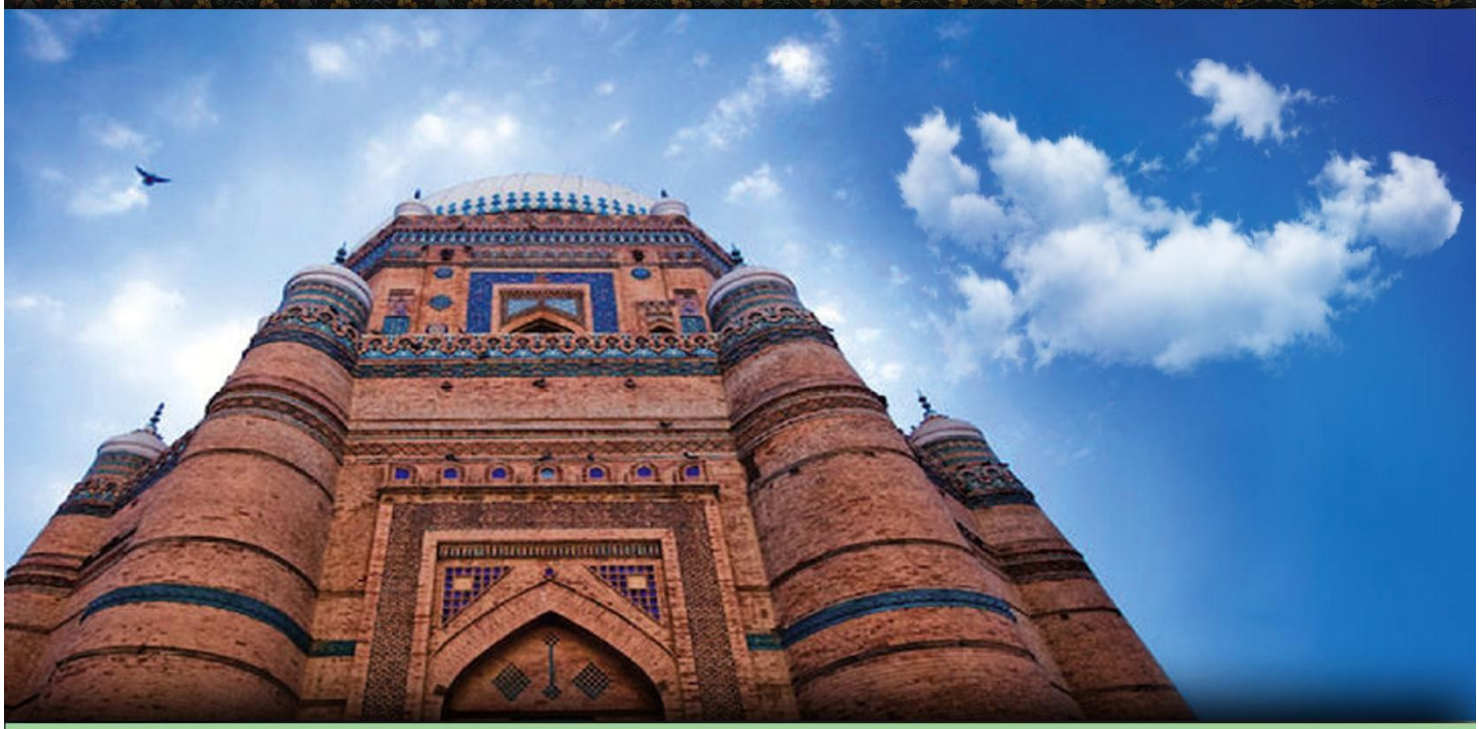

पादरी मौलवी इमाद-उद्दीन लाहिज़

Rev. Mawlawi Dr. Imad ud-din Lahiz

1889

Rev. Mawlawi Dr.Imad ud-din Lahiz

1830–1900

पादरी मौलवी इमाद-उद्दीन लाहिज़

ऐ तू जो सोता है जाग और मुर्दों में से उठ कि मसीह तुझे रोशन करेगा।

(इंजील मुक़द्दस ख़त इफ़िसियों 5:14)

तफ़्तीश-उल-औलीया

ये किताब सूफ़िया और उनके तसव्वुफ़ और उनके वलीयों की कैफ़ियत के बारे में

पादरी मौलवी इमाद-उद्दीन लाहिज़ डी॰ डी॰

ने इस मुराद से लिखी है कि अहले-फ़िक्र सूफ़ी इस से फ़ायदा उठाएं

और दर्मियान 1889 ई॰
रिलीजियस बुक सोसाइटी की मंज़ूरी से
रियाज़ हैंड प्रैस में तबा हुई

Taftishul Auliya

Researches about Islamic Saints
An inquiry into the origin of Sufi Saints in Islam

By

Rev. Mawlawi Dr.Imad ud-din Lahiz

Wake up, sleeper, rise from the dead, and Christ will shine on you. (Ephesians 5:14)

फ़हरिस्त-ए-मज़ामीन तफ़्तीश-उल-औलीया

दीबाचा

1 फ़स्ल	ज़माना गुज़शता व हाल की कैफ़ीयत में	7
2 फ़स्ल	इस्लाम और तसव्वुफ़ के बयान में	9
3 फ़स्ल	सूफ़ी की वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) के बयान में	11
4 फ़स्ल	अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्में) सूफ़िया के बयान में	14
5 फ़स्ल	वली और विलायत के बयान में	17
6 फ़स्ल	उन सूफ़ी वलीयों के इख़्तयारात के बयान में	19
7 फ़स्ल	मज्ज़ूब (मस्त मौला) वलीयों के बयान में	20
8 फ़स्ल	क़लंदरों (मस्त फ़क़ीर) के बयान में	21
9 फ़स्ल	सालकीन के बयान में	23
10 फ़स्ल	इन वलीयों के ओहदों के नाम बजब इख़्तयारात	25
11 फ़स्ल	सूफ़ी वलीयों की मुशाबहत बअम्बिया के बयान में	30
12 फ़स्ल	तक़्सीम आलम या मुक़ामात आलम के बयान में	31
13 फ़स्ल	माअर्फ़त के बयान में	32
14 फ़स्ल	शरीअत तरीक़त हक़ीक़त के बयान में	33
15 फ़स्ल	यक़ीन के बयान में	35
16 फ़स्ल	वहदत-उल-वजूदी और शुहूदी के बयान में	35
17 फ़स्ल	अत्वार तक़र्रुब सूफ़िया के बयान में	39
18 फ़स्ल	इल्म सीना और सफ़ीना के बयान में	42
19 फ़स्ल	बैअत यानी पीरी मुरीदी के बयान में	43
20 फ़स्ल	तसव्वुर-ए-शेख़ के बयान में	44
21 फ़स्ल	नफ़ी इस्बात के बयान में	45
22 फ़स्ल	हब्स के बयान में	46
23 फ़स्ल	रोज़ों और शबदारीयों के बयान में	47

24 फ़स्ल	चिल्लाकशी के बयान में	48
25 फ़स्ल	सूफ़िया के विर्द वज़ाइफ़ के बयान में	49
26 फ़स्ल	नक़्शबंदिया की बाअज़ इस्तिलाहात के बयान में	50
27 फ़स्ल	लताइफ़ ख़मसा के बयान में	52
28 फ़स्ल	हलक़ा और तूझ के बयान में	53
29 फ़स्ल	मुराक़बा के बयान में	55
30 फ़स्ल	शजरों और इजाज़त के बयान में	56
31 फ़स्ल	सूफ़िया के बाअज़ ख़ास दाअवों के बयान में	57
32 फ़स्ल	तनासुख़ के बयान में	58
33 फ़स्ल	सूफ़ियों की वो कैफ़ीयत जो अब है	62

दीबाचा

पैरों (यानी मानने वालें पीरों बुज़ुर्गों का) नाम लेते हैं कि फ़ुलां फ़ुलां बुज़ुर्ग हमारे दर्मियान ऐसे वली अल्लाह हुए हैं। और जब मसीह ख़ुदावंद के मोअजज़ों का बयान सुनते हैं तो अपने पीरों की करामतों का ऐसा ज़िक्र करते हैं कि गोया मसीह के मोअजज़ों से ज़्यादा-तर क़ुदरतें और तासीरें इनके पीरों से ज़हूर में आएं हैं बल्कि पैग़म्बरों के मोअजज़े इन के वलियों की करामतों के सामने हक़ीर हैं। इन लोगों ने ना पीरों को पहचाना ना पैग़म्बरों को ना करामतों और मोअजज़ों की माहीयत (असलियत) को समझा।

ये तो अंधी ऊंटनी की मानिंद दुनिया के जंगल में चरते हैं। मेरे साथ ऐसे लोगों की बहुत बातें हुईं और हुआ करती हैं क्योंकि एक वक़्त था कि मैं उनमें से था। इसलिए में उनके ख़यालों को समझता और पहचानता हूँ। कि वो किस रंग में हैं ये लोग सूफ़िया मशरब (मज़हब) के हैं।

और मुझे मालूम है कि उनमें बकवासी और मुतअस्सिब और क़ब्र परस्ती के सबब मुर्दा दिल लोग बहुत हैं तो भी बाअज़ शख़्स इन में ख़ुदा की क़ुर्बत (नज़दिकी) के तालिब होते हैं। और उन के अख़्लाक़ भी अच्छे होते हैं। और वो दुनिया के किसी फ़िर्क़े के साथ अदावत नहीं रखते बेतास्सुब हो कर सुलह-कुल का दम भरते हैं। और हुसूल-ए-क़ुर्बत-ए-इलाही की ग़रज़ से बड़ी रियाज़तें और मशक़्क़तें खुफ़ीया तौर पर करते हैं। और यही ख़ूबी ज़रूर उन बाअज़ में है। लेकिन अफ़्सोस कि वो सादा-लौह और फ़रेब-ख़ुर्दा ग़लती में फंसे हुए बे-राह चले जाते हैं। अगरचे बाअज़ में तहक़ीक़ात की ताक़त है। लेकिन आदत नहीं और बाअज़ में ताक़त ही नहीं है कि अज़द-ख़ूद दर्याफ़्त करके ग़लती को छोड़ें और दुरुस्त तौर (तरीक़े) को इख़्तियार करें ताकि फ़िल-हक़ीक़त सच्चे ख़ुदा की रिफ़ाक़त (साथ) और क़ुर्बत (नज़दिकी) हासिल हो और वो सच-मुच वली अल्लाह हो जाएं।

और ये ही ज़ाहिर है कि इस मुल्क में अब तक ख़ुदा की पाक कलीसिया की तरफ़ से उनको ऐसी किताब नहीं दी गई कि जो उनके ख़यालों को हिलाए और उनको ज़िंदा ख़ुदा की तरफ़ बुलाए और उनके ख़यालों में रोशनी का बाइस और उस जंजाल को जिसमें वो फंसे हुए हैं सुलझाए और उन किए गोरख धंदे को हिलाए और उनकी

ग़लतीयों को उन पर ज़ाहिर करके उनके सामने राह-ए-रास्त को पेश करे। शायद उनमें कुछ जानें और हलाक होने से बचें।

लिहाज़ा मैंने इरादा किया कि एक मुख़्तसर किताब उनके लिए लिखूँ जिनमें ख़ास इन बातों का ज़िक्र हो जो इस बारे में तन्क़ीह तलब हैं और फ़ुज़ूल बातों का कुछ ज़िक्र ना हो। पस मैंने इस किताब को लिख दिया और इस का नाम "तफ़्तीश-उल-औलीया" रखा क्योंकि इस में सूफ़ियों के वलीयों की तफ़्तीश हुई है। कि वो कैसे लोग हैं और उनमें क्या कुछ है? ख़ुदा करे कि सब सूफ़ी इसे ग़ौर से पढ़ें और फ़ायदा उठाएं। वबा-अल्लाह-अतूफ़ीक وباللہ التوفیق

1 पहली फ़स्ल ज़माना गुज़श्ता व हाल की कैफ़ीयत में

हर अक़्लमंद आदमी को इस बात में कुछ शक व शुब्हा नहीं कि ज़माना-ए-गुज़िश्ता में दरमियाँ ख़यालात मर्दुम दुनिया के ख़ुसूसुन ग़ैर-अक़्वाम के दर्मियान सख़्त अंधेरा था और इस वक़्त दुनिया में बहुत रोशनी और थोड़ा अंधेरा है। बाअज़ अंधेरे के अस्बाब बाइंतज़ाम ख़ुदा रफ़्ता-रफ़्ता उठ गए हैं और उठते चले जाते हैं।

गुज़श्ता ज़माने की निस्बत अब लोगों के तजुर्बात बढ़ गए हैं। अब हमें वो बातें मालूम हो गई हैं। जो कि पहले लोगों को मालूम ना थीं। अगले ज़माने में अपने अपने मलिक के दर्मियान घिरे हुए बैठे थे दूर दराज़ के ममालिक के बाशिंदों से ख़त व किताबत और मुलाक़ात का मौक़ा ना था कि आपस में ख़यालात को मुक़ाबला करके सहीह व सकीम में इम्तियाज़ कर सकते। अब ये मौक़ा ख़ूब हासिल है।

अगले ज़माने में छापा ख़ाने ना थे और ये हिक्मत आदमीयों को मालूम ना थी। पस वो अपने अपने ख़यालात की किताबें अपनी ज़बान में बमुश्किल क़लम से लिखा करते और लिखवाते थे। और बहुत से दिक़्क़त से थोड़े नुस्खे मौजूद होते थे। और बड़ी क़ीमत से बिकते थे। अब किताबें आम हो गई हैं।

अगले ज़माने में पढ़ने लिखने का आम रिवाज भी ना था। हज़ारों जाहिल अश्ख़ास अनपढ़ होते थे। और आलिम फ़ाज़िल तो बहुत ही थोड़े होते थे। और वो भी सिर्फ अपने मुल्की ख़यालात के आलिम हुआ करते थे, ना जहान की बातों से आगाह। और सब जाहिल हिदायत के लिए उनके मुँह की तरफ़ ताकते थे। अब ये बातें दफ़ाअ

हो गईं। डाक और रेल और तार और मदरसों मतबात और कस्रत कुतुब और अख़बारात और ताअलीम आम और मुल्की असिन चीन वग़ैरा से दुनिया का रंग ही बदल गया और रोशनी का ज़माना आ गया है।
गुज़श्ता तारीकी के अहद में हर हर मलिक के लोगों में से बाअज़ चतुर आदमीयों ने बक़द्र अपनी अपनी फ़हमीदा के दीन व दुनिया के इंतिज़ाम के लिए कुछ-कुछ मज़ाहिब और दस्तुरात जारी कर लिए हैं जिन्हें इस वक़्त कुछ बातें सहीह और मुनासिब और ग़लत और ग़ैर-मुनासिब नज़र आती हैं। बल्कि इस रोशनी के ज़माने के दर्मियान मज़ाहिब और दस्तुरात दुनिया के अजीब खलबली मची हुई है। बाअज़ अपने मज़्हबों को छोड़कर दूसरे मज़्हबों में चले जाते हैं। बाअज़ अपने क़दीम मज़्हब की मुरम्मत करते हैं। बाअज़ ला-मज़्हब हो बैठते हैं और बिल्कुल झूट बोलते हैं। कि हम अपने क़दीम मज़्हब पर हैं। जब कि क़दीम ख़यालात व दस्तुरात छोड़ दिया है। हाँ बाअज़ हैं जो कि बेफ़िक्री से लकीर के फ़क़ीर हैं।

अब फ़िक्र कीजीए कि ये खलबली दुनिया में क्यों पड़ी है? उसी रोशनी के सबब जो कि अब दुनिया में आ गई है। इन लोगों ने अपने मज़ाहिब क़दीमा में दर्मियान इस रोशनी के, कुछ गलतीयां देखीं और उनकी तमीज़ ने उन्हें बेचैन किया। तब से वो कुछ हरकतें करने लगे हैं।

यहूदी और ईसाई दीन की किताबें भी उसी तारीकी के अहद में लिखी गईं थी। लेकिन इस रोशनी के ज़माने में वही एक ईसाई दीन है जो हर मुंसिफ़ और आक़िबत अंदेश आदमी के ख़्याल में कायम रह सकता है और बग़ैर इस के वो कहीं तसल्ली नहीं पा सकता। बल्कि जिस क़द्र ये रोशनी दुनिया में ज़्यादा बढ़ती है। उसी क़द्र ज़्यादा ज़्यादा इस दीन की ख़ूबी ज़ाहिर होती जाती है। ये दीन तमाम दुनिया की हदों तक दौड़ गया और इस दीन की असल किताब यानी बाइबल शरीफ़ दो सौ पच्चास ज़बानों से ज़्यादा में तर्जुमा हो कर आम हो गई। और यूं इस दीन का मुक़ाबला दुनिया के तमाम मज़ाहिब के साथ ख़ूब हो गया और हो रहा है। इसने दुनिया के सब मज़्हबों को गिरा दिया है और कोई दुनिया का मज़्हब इस पर ग़ालिब ना आया और ना आ सकता है। इसलिए कि ये ख़ुदा से है। अगरचे उस अहद तारीकी में जारी हुआ, मगर ख़ुदा से जारी हुआ था लिहाज़ा इस अहद-ए-रोशनी में क़ायम और मज़बूत रहता है। अहले-दुनिया के मज़ाहिब इन्सानों से थे इसलिए वो शिकस्त खा गए। लेकिन ख़ुदा की डाली हुई बुनियाद मुहकम है इसे अबद तक जुंबिश ना होगी। और वही ईसाई दीन है।

हाँ बाअज़ दुनियावी अक़्लमंदों ने इस दीन का भी बड़ी सख़्ती से मुक़ाबला किया है और इस पर कुछ एतराज़ किए हैं। क्योंकि कोई बात ख़्वाह हक़ हो या ना-हक़ लोगों ने बग़ैर एतराज़ किए नहीं छोड़ी ख़ुदा की पाक ज़ात पर भी मुल्हिदों ने एतराज़ किए हैं। लेकिन सिर्फ एतराज़ों से कोई बात बातिल नहीं हो सकती है। जब तक कि वाजिबी एतराज़ उस को कहा ना जाए दीगर मज़ाहिब पर जो एतराज़ हुए हैं वो उन्हें खा गए हैं। मगर मसीही दीन पर जो एतराज़ हुए हैं वो उसे बातिल नहीं कर सकते। बल्कि उल्टे मोअतरिज़ (यानी एतराज़ करने वाले) की हालत पर वाक़ेअ होते हैं।

हम लोग जो ईसाई हैं और ख़ुद को ख़ुदा और अपनी तमीज़ों के सामने बाइंसाफ़ समझते हैं। हमने अपनी बातों पर हत्त-उल-मक़्दूर बाइंसाफ़ फ़िक्र किया है। हमें ये मालूम हुआ है कि जिन उसूलों पर दीन-ए-ईसाई क़ायम है। उनका मानना हर फ़र्दे बशर पर इस रोशनी के ज़माने में भी ज़्यादा-तर फ़र्ज़ है और जिन उसूलों पर क़ायम हो कर हमारे मुख़ालिफ़ बोलते हैं वो उसूल अक़्लन बातिल और मकरूह हैं। इसलिए उनके एतराज़ भी नालायक़ होते हैं और हमारे दिलों में से दीन ईसाई को हिला नहीं सकते। पस हम कह सकते हैं कि मुख़ालिफ़ शिकस्त ख़ूर्दा हैं और दीन-ए-ईसाई फ़त्हमंद है हर क़िस्म के मुख़ालिफ़ पर यानी दुनियावी मज़ाहिब के ख़यालात पर और तमाम जिस्मानी व रुहानी बद ख़्वाहिशों पर और सब अहले अलहाद (बेदीन) पर बल्कि तमाम ज़ालिम बादशाहों की तलवारों पर और सब सलीम-उल-तबा आक़िबत अंदेश आदमीयों के दिलों में भी।

चार लफ़्ज़ अहद-ए-अतीक़ में ऐसे हैं, जिन पर इस वक़्त फ़िक्र करना चाहीए। अव्वल अंधेरा, दुवम मौत का साया, सोइम चिराग़, चहारुम आफताब-ए-सदाक़त पहले सारी दुनिया में अंधेरा था और मौत के साये में सब बैठे थे, लेकिन यहूदीयों पर मौत का साया ना था, उन पर मसीह का साया था कि जो ज़िंदगी है वो उस के नमूनों में थे। हाँ कुछ-कुछ अंधेरा उन पर भी था, मगर ऐसा जैसा रात को चिराग़ आदमीयों के इर्दगिर्द होता है, क्योंकि उनके पास ख़ुदा का कलाम था। जो कि चिराग़ की मानिंद था और उस चिराग़ को रोशनी में ये दिखलाया गया था कि आफताब-ए-सदाक़त निकलने वाला है। और वो सारे जहान को रोशन करेगा। सच्चाई के इज़्हार से। अब हम देखते हैं कि सय्यदना मसीह की रोशनी से कि वो आफताब-ए-सदाक़त है तमाम दुनिया में धूप से खिल गई है और हर बुराई भलाई तमाम दुनिया में नज़र आती है। सच्ची बातें और झूटी बातें आश्कार हो गईं। भले बुरे आदमी भी पोशीदा ना रहे। पस ये वक़्त ख़ुदा के वाअदे के मुताबिक़ आया है और आता चला जाता है।

तारीकी और मौत के नीचे से निकलने का वक़्त ही वो ज़माना है कि अब हर कोई अपने ख़यालात को और अपने मज़्हब की बातों को बल्कि अपने आपको भी इंजील के सामने लाए और बुतलान (ग़लत) व सच्चाई में इम्तियाज़ (फ़र्क) करे। अगर उस के पास इंजील से बेहतर कोई चीज़ है वह इसे थामे रहे। और हमें भी दिखलाये और अगर उस के पास महज़ बुतलान और धोका है तो वो गुमराही में क्यों मरना चाहता है? अपनी जान पर रहम करे और ग़लती में से निकले।

सूफ़ियों को भी इस वक़्त मसीह की रोशनी में अपना तसव्वुफ़ और सुलूक लेकर हाज़िर होना वाजिब है और यह देखना कि उनके पास क्या कुछ है। लेकिन वो साहब अब तक गोशों में बैठे हुए हू-हक़ करते हैं और अपनी ख़ानक़ाहों और मुर्दों की क़ब्रों पर से उठकर ज़िंदगी के दरख़्त का फल खाने को बाहर नहीं आते मैं चाहता हूँ कि उन्हें होशयार करूँ और दाइमी इस्तिग़राक़ में से निकाल के ज़िंदगी की रोशनी में लाऊँ। मेरे भी बाअज़ बुज़ुर्ग हम-जद हैं, जो सूफ़ी हैं और बहुत से शरीफ़ ज़ादे हैं। जो इस तसव्वुफ़ की आफ़त में मुब्तला हैं। ख़ुदा तआला उनकी मदद करे और उन्हें हयात-ए-अबदी में शामिल करें।

2 फ़स्ल इस्लाम और तसव्वुफ़ के बयान में

सवाल ये है कि आया इल्म-ए-तसव्वुफ़ उलूम इस्लाम में दाख़िल है या नहीं और कि सूफ़ी आदमी मुसलमान है या नहीं। **"इस्लाम"** के माअनी अपनी हदीसों में मुहम्मद साहब ने यूं बतलाए हैं ख़ुदा को एक और मुहम्मद साहब को नबी मानना, नमाज़, रोज़ा, हज और ज़कात अदा करना इस्लाम है और अक़्मंदल बह वुसअत यूं कह सकते हैं कि जो कुछ मुहम्मद साहब ने तमाम मज्मूआ क़ुरआन और उस के मुवाफ़िक़ हदीसों में सिखलाया है वही उनका इस्लाम है। चुनान्चे जो कुछ वेदो में लिखा है वही वेदांत है। और जो कुछ इंजील मुक़द्दस में मज़्कूर है वही ईसाइय्यत है। पस अगर इल्म-ए-तसव्वुफ़ क़ुरआन व हदीस से बास्तंबात सहीह मुस्तंबित है तो वो उलूम-ए-इस्लाम में से है, और हर सूफ़ी आदमी मुसलमान है। और अगर वो क़ुरआन व हदीस से नहीं है कोई ख़ारिजी बात है जो सूफ़िया ने कहीं से निकाली है। तो वो उलूम-ए-इस्लाम में से नहीं और ना सूफ़ी आदमी मुसलमान है। क्योंकि उस के

अक़ाइद तसव्वुफ़ के हैं ना कि इस्लाम के और जो मुहम्मद साहब को मानता है। बतौर सुलह-कुल के मानता है ना कि बतौर इस्लाम के।

अब इस बात का फ़ैसला कौन कर सकता है? अव्वलन चाहिए कि मोअतबर मुहम्मदी आलिम उस का फ़ैसला करें कि वो तसव्वुफ़ को अपने इस्लाम का जुज़ (हिस्सा') समझते हैं या नहीं साईनयन हम ख़ुद फ़िक्र कर सकते हैं कि तसव्वुफ़ इस्लाम में से निकला है या बाहर से आया है। सबसे ज़्यादा मोअतबर किताब इस्लाम की तफ़्सीर इत्तिक़ान है, इस की नूअ 78 में लिखा है कि :-

واماکلام الصوفیۃ فی القرآن فلنس بنمفسیر۔

यानी सूफ़िया का कलाम जो क़ुरआन की बाअज़ आयात के मअनी में होता है, वो क़ुरआन की तफ़्सीर में नहीं है।

यानी उनका अपना तज्वीज़ किया हुआ मज़्मून होता है। जो कि मुहम्मद साहब की मुराद नहीं है। फिर लिखा है कि :-

(النصوص علےظواہر ہا والعدول عنہا الی معا نِ ید عیہا اہل الباطن الحاد)

यानी वो जो साफ़-साफ़ क़ुरआनी आयात हैं, वो अपने ज़ाहिरी माने पर हैं। उन ज़ाहिरी मअनी से उस तरफ़ झुकना जिनके मुद्दई अहले बातिन यानी सूफ़ी हैं अल-हाद (बेदिनी) यानी कुफ्र हैं।

अब नाज़रीन को मालूम करना चाहिए कि तसव्वुफ़ किस चीज़ का नाम है? अक्सर कुतुब-ए-तसव्वुफ़ देखने से मालूम हुआ है कि उनमें दो क़िस्म की बातें मज़्कूर हैं :-

अव्वल इस्लाम की बातें हैं मसलन ईमान, नमाज़ रोज़ा ख़ुलूस जो कि मुहम्मदियत है। इन लोगों ने अपनी किताबों में नक़्ल की है। ये सब कुछ हरगिज़ तसव्वुफ़ नहीं है यह तो इस्लाम है और इस का बुतलान हिदायत-उल-मुस्लिमीन और तवारीख़ मुहम्मदी व ताअलीम मुहम्मदी वग़ैरा में बंदे ने काफ़ी तौर पर दिखला दिया है।

दुवम ख़ास बातें सूफ़िया की हैं कुछ अक़ाइद हैं कुछ ख़यालात हैं कुछ अतवार-ए-रियाज़त हैं जिनका सबूट ना क़ुरआन से है ना मोअतबर हदीसों से बल्कि सूफ़िया ने अपनी तजवीज़ों से और कुछ बुत-परस्त क़ौमों से लेकर जमा की हैं। इसी

का नाम इल्म-ए-तसव्वुफ़ या सुलूक है और मेरी बहस इस किताब में इन्ही बातों से है। और वह तसव्वुफ़ की बातें हमेशा इस्लाम से अलग नज़र आती हैं। और कहा जाता है कि ये मसअला तसव्वुफ़ का है और ये इस्लाम है।

अब सूफ़ियों से कोई पूछे कि क्या तुम अपने तसव्वुफ़ी ख़यालात को कुरआन व हदीस की मोअतबर तफ़्सीरों से साबित कर सकते हो कि आप लोग मुसलमान समझे जाएं और आप के वलीयों की विलायत इस्लाम की बरकत समझी जाये। और आप तो हरगिज़ साबित नहीं कर सकते कि तब वही बात जलाल-उद्दीन सिवती के ख़यालात-ए-तसव्वुफ़ की निस्बत दुरुस्त होगी, कि **"अल-हाद"** (मुल्हिद, बेदीन)। और जब तसव्वुफ़ी ख़यालात अल-हाद (बेदीन) ठहरे तो फिर सूफ़ी क्या हुआ मुल्हिद हुआ कि नहीं? और मुल्हिद से बिलफ़र्ज़ करामातें भी ज़ाहिर हो तो अल-हाद (बेदिनी) की हक़ीक़त साबित होगी ना कि इस्लाम की।
मुहम्मदियों में जो 72 फ़िर्क़े मशहूर हैं वो सब के सब ग़ालिबन तसव्वुफ़ को नाचीज़ जानते हैं। और शिआ तो इस के बहुत ही मुख़ालिफ़ हैं। लेकिन सुन्नीयों में से बाअज़ हैं जो तसव्वुफ़ की क़द्र करते हैं। बल्कि अपने शागिर्दों को उलूम-ए-इस्लाम सिखलाने के पीछे से तसव्वुफ़ की तरफ़ से हिदायत करते हैं और **वो कामिल सूफ़ी की तलाश में हमेशा रहते हैं क्योंकि इस्लाम में उनकी तसल्ली नहीं होती** तसव्वुफ़ी ख़यालात के वसीले से ख़ुदा के नज़्दीक जाना चाहते हैं।

क्या ख़ूब बात है कि मुहम्मद साहब ने इस्लाम निकाला सूफ़ियों ने तसव्वुफ़ निकाला इस्लाम के वसीले से कोई वली अल्लाह ना हुआ तसव्वुफ़ के वसीले से वली अल्लाह हो गए। तब तसव्वुफ़ इस्लाम से बड़ा और सूफ़ी मुहम्मद साहब से बड़े हादी ठहरे फिर वो कहते हैं कि हम मुहम्मद साहब के पैरूँ (मानने वाले) हैं और वह हमारे पेशवा हैं लेकिन इस पेशवाई का सबूत उस वक़्त हो सकता है कि तसव्वुफ़ कुरआन से साबित हो जाता है तसव्वुफ़ तो वेदों से साबित होता है, ना कि कुरआन से। पस उनके पेशवा वेदों के मुसन्निफ़ होंगे, ना कि मुहम्मद साहब के। एक मुहम्मदी बुज़ुर्ग ने यूं कहा है:-

علمِ دین فقہ ہست و تفسیر و حدیث ہرکہ خواند غیر ازین گرد وخبیث

ये शेअर और जलाल उद्दीन का क़ौल बाला तसव्वुफ़ को मुहम्मदी दीन से बेइज़्ज़ती के साथ बाहर निकालता है। मगर बाअज़ मुहम्मदी मौलवियों ने जो तसव्वुफ़ पर फ़रेफ़्ता (दीवाने) हैं बातकल्लुफ़ तसव्वुफ़ को इस्लाम में दाख़िल किया है, कि उस को इस्लाम का लुब्ब-ए-लुबाब समझा है और ये उनकी ग़लती है।

मिश्कात किताब-उल-ईमान में जो पहली हदीस है उस में लिखा है कि :-

فَأَخْبِرْنِي عَنِ الإِحْسَانِ، قَالَ: أَنْ تَعْبُدَ اللَّهَ كَأَنَّكَ تَرَاهُ فَإِنْ لَمْ تَكُنْ تَرَاهُ فَإِنَّهُ يَرَاكَ

जिब्राईल ने हज़रत से पूछा कि एहसान क्या चीज़ है? फ़रमाया ये कि तू ख़ुदा की ऐसी इबादत करे गोया तू उस को देखता है, और अगर ऐसा ना कर सके तो गोया कि वो तुझे देखता है। मतलब ये कि दिली हुज़ूरी से इबादत करना एहसान है।

मज़ाहिर-उल-हक़ जिल्द अव्वल सफ़ा 26 में लिखा है कि एहसान इशारा है, असल तसव्वुफ़ पर, कि तवज्जा इलल्लाह (الی اللہ) से मुराद है, कि और फ़िक़्ह बग़ैर तसव्वुफ़ के तमाम नहीं होती।

यहां इस मुसन्निफ़ ने धोका खाया या चतुराई का कलाम किया है कि तसव्वुफ़ मुहम्मदी फ़िक़्ह का तक्मिला हो के इस्लाम के उलूम में जगह पाए। इसलिए नाज़रीन को मालूम हो जाये कि लफ़्ज़ “तसव्वुफ़” बमाअनी सफ़ाई क़ल्ब और बात है। और इल्म-ए-तसव्वुफ़ को इस्तलाहन “मजमूआ क़वाइद सूफ़िया” का नाम है और बात है, कि बग़ैर इस मजमूआ क़वाइद के अगर कोई दिली हुज़ूरी से इबादत कर सकता है फिर इस इल्म-ए-तसव्वुफ़ पर लफ़्ज़ एहसान से क्योंकर इशारा होगा।

मैं तो ख़ुश हूँ कि तसव्वुफ़ इस्लाम का एक हिस्सा या लुब्बे-लबाब साबित हो। ताकि ताअलीम मुहम्मदी और भी ज़्यादा हक़ीर हो जाये। लेकिन इन्साफ़ के सबब से कहता हूँ कि सारा इल्म-ए-तसव्वुफ़ हरगिज़ क़ुरआन व हदीस से नहीं निकला। नादानी की बातें बाहर से सूफ़िया ने लेकर जमा की हैं। क्योंकि इस्लाम से दिल की सेरी ना हुई थी और रूह की भूक प्यास ना भुजी थी तब भूके प्यासों ने इधर उधर ताका कि कहीं से कुछ पाउं। लेकिन जो कुछ बुत परस्तों से पाया और खाया वो ज़हर-ए-क़ातिल था। कि उनकी रूहें हलाक हो गईं और वो हमा औसत (ہمہ اوست) के ग़ार में उतर गए।

नजात और तसल्ली ज़िंदगी और ख़ुशी सिर्फ़ ख़ुदा तआला के कलाम से हासिल होती है और वो कलाम इन सूफ़ियों के पास ना था। इसलिए वो अंजाम बख़ैर ना हुआ। अपने गुनाहों में धंसे हुए इस जहां से चले गए और रोते हुए गए और वग़दग़ा में गए कि बचेंगे या ना बचेंगे। ख़ुदा के बंदे बाइबल शरीफ़ के मोमिनीन हमेशा बवसीला कलाम-उल्लाह के तसल्ली और मग़फ़िरत पा कर मरते हैं और मसीह ने फ़रमाया है कि :-

जो कोई मेरे पास आता है कभी भूका और प्यासा ना होगा।

यहां रूह की भूक और प्यास का ज़िक्र है। हम जितने ईमान से मसीह के पास आए हैं हमने तसल्ली और चेन हासिल किया है। हम इलाही क़ुर्बत (खुदा की नज़दिकी) और मग़फ़िरत वग़ैरा के लिए इधर उधर हरगिज़ नहीं ताकते। हम सैर हो गए हैं और यह ख़ुदा के कलाम का ख़ास्सा है कि मोमिन को सैर करे। ये काम क़ुरआन से और तसव्वुफ़ से और दुनिया की किताब से और किसी रियाज़त व अमल और वज़ीफ़ा से नहीं हो सकता। सिर्फ मसीह से होता है क्योंकि वो अज़ली कलमा है।

3 फ़स्ल सूफ़ी की वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) के बयान में

किताबों में इस फ़िर्क़े की तीन वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) मज़्कूर हैं। **अव्वल** ये कि "सूफ" के मअनी हैं पश्म या ऊन, पस वजह पश्मीना पोशी के ये सूफ़ी कहलाते हैं। मेरे गुमान में ये कुछ बात नहीं है इस बात से तो अंग्रेज़ बड़े सूफ़ी हैं वो सब हमेशा ऊनी कपड़े पहनते हैं। भेड़ बकरी और ऊंट बड़े सूफ़ी हैं क्योंकि सूफ पोश हैं। यहया और इल्यास पैग़म्बरों ने ऊंट के बालों की पोशाक इस्तिमाल की है क्या वो सूफ़ी थे? हरगिज़ नहीं। अलबत्ता अक्सर दरवेशों का दस्तूर रहा है कि एक कम्बल या लुबादा ऊन का रखते थे कि किफ़ायत-शिआरी और जिस्मी आराम और बुज़ुर्गाना शक्ल क़ायम रखने के लिए। अगले ज़माने के फ़क़ीर अक्सर कम्बल पोश थे। और अब भी बाअज़ ऐसे हैं कि कम्बल पोशी को दरवेशी की सुन्नत समझते हैं।

अन्वार-उल-आरिफीन (انوار العارفین[1]) सफ़ा 82 में लिखा है कि हज़रत मुहम्मद साहब ने फ़रमाया कि (علیکم بلبس الصوف) यानी ऊन पोशी को अपने ऊपर लाज़िम समझो और एक और हदीस में है कि ۔ کان النبی یلبس الصوف ویر کب الحمار नबी साहिबा पश्मीना पोश रहते। और गधे की सवारी किया करते थे और ये भी हदीसों में है कि एक स्याह कम्बल मुहम्मद साहब ने अली को दिया था। सूफ़ी कहते हैं कि वो फ़क़ीरी का निशान था। और वो कम्बल पीरों में दस्त-ब-दस्त नसीर उद्दीन महमूद तक चला आया था। आख़िर को महमूद उसे अपनी क़ब्र में ले गया। इसलिए इस

[1] انوار العارفین

फ़िर्क़े में कम्बल पोशी मिस्ल एक सुन्नत के हो गई इमाम-ए-आज़म साहब और दाऊद ताई और इब्राहिम अदहुम और हसन बस्री और सलमान फ़ारसी वग़ैरा ने और अव्वल ज़माने के अक्सर बुज़ुर्गों ने कम्बल पोशी इख़्तियार की थी। पस् एक वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) उनकी कम्बल पोशी है। इस वजह से सिर्फ कम्बल पोशों को सूफ़ी कहना चाहिए। उन पीरजादों को जो ग़ालीचों पर बैठते और कमख़्वाब पहनते और पेच्वान (हुक़्क़ा) पीते हैं, वो नाहक़ सूफ़ी कहलाते हैं। जब कि कम्बल पोश नहीं हैं।

दूसरी वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) सूफ़ी की ये बयान हुई है कि :-

صوفی آنرا گویند گاوار دل خودراوصاف دار خاطر خودراازخیال غیر حق۔

इस इबारत का मतलब ये है कि वो ग़ियार हक़ का ख़्याल भी दिल और ख़ातिर में ना आने दें। यानी हमादस्त के ख़्याल से मुसतग़र्क़ रहे वो सूफ़ी है। या सूफ़ी वो है जिस ने अपने दिल को ख़ुदा के लिए साफ़ किया है और साफ़ करने के मअनी उनकी इस्तिलाह के मुताबिक़ यही हैं। कि किसी ग़ैर शैय के वजूद का क़ाइल ना रहे उसे सब कुछ ख़ुदा नज़र आए यानी हमा औसत (ہمہ اوست) के दर्जे को ख़ूब पहुंचा हो। मैं समझता हूँ ऐसे आदमी ने अपने दिल को ज़्यादा-तर कुदूरत (मेला) अगेन किया है कि ख़ालिक़ की इज़्ज़त मख़्लूक़ात को दी है। और ख़ुदा को अपने ख़्याल में से निकाला है। और ग़ैर चीज़ों को इस की जगह में बिठाया है। ऐसे शख़्स को साफ़ दिल कहना ग़लत है। अगर इस वजह से ये लोग सूफ़ी कहलाते हैं तो ये वजह ख़िलाफ़ ए वाक़ेअ के है।

तीसरी वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) सूफ़ी की और है और वो मेरे गुमान में ज़्यादा-तर सहीह है। चाहिए कि सब मसीही लोग इन सूफ़ियों को इस तीसरी वजह के सबब से सूफ़ी कहें और वो ये है **कि मक्का शहर में ज़हूर-ए-इस्लाम से पहले जब काअबा बुतों से भरा हुआ था। तो उस के मुंतज़िम और पूजारी या ख़िदमत-गुज़ार क़ौम सूफ़ा के लोग थे और उस वक़्त उनकी इज़्ज़त अरब में थी। वो पीरों के मुवाफ़िक़ थी और सूफ़ा कहलाते थे, कि जब इस्लाम ज़ाहिर हुआ तो मुहम्मदियों में से बाअज़ शख़्स बाअज़ उमूर में उन बुत परस्तों से इत्तिफ़ाक़ के सबब उनकी तरफ़ मंसूब हो कर सूफ़ी कहिलाए।** शुरू में इसी सबब से उन्होंने ये नाम पाया फिर कम्बल

पोशी और सफ़ाई वग़ैरा के चर्चे हुए। और वो असली पहली मकरूह बात पोशीदा हो गई। देखो ग़ियास-उल-लुग़ात (غیاث اللغات) लफ़्ज़ "सूफ़ी" के जेल में क्या लिखा है :-

وصوفہ ایضاً ابوحی من مضرو ہوالغوث بن مربن اوبن طائحتہ کا نوایحذ مون الکعبتہ ویحبیڑون الحاج فی الجاہلتہ اے یفیفون بہم من عرفات وکان احد ہم یقوم فیقول اجیڑی صوفہ فاذ اجازت قال اجیڑی خندف فاذا اجازت اذن اللناس کلہم فی الا حاذۃ اوہم قوم من افنا القبایل تجعموا فتشکبواکتشبک الصوفۃ

फिर क़ामूस और मुंतही-उल-अरब में एक ही इबारत यूं लिखी है :-

وصوفہ ایضاً ابوحی من مضرو ہوالغوث بن مربن اوبن طائحتہ کا نوایحذ مون الکعبتہ ویحبیڑون الحاج فی الجاہلتہ اے یفیفون بہم من عرفات وکان احد ہم یقوم فیقول اجیڑی صوفہ فاذ اجازت قال اجیڑی خندف فاذا اجازت اذن اللناس کلہم فی الا حاذۃ اوہم قوم من افنا القبایل تجعموا فتشکبواکتشبک الصوفۃ

इस का मतलब ये है कि मुज़िर के घराने में से एक क़बीले के बाप का नाम सूफ़ा है। उस का दूसरा नाम ग़ौस था और वो मरबन् ऊबन ताएख़ा का बेटा था ये लोग काअबा की ख़िदमत करते थे। और अय्याम-ए-जाहिलियत में हाजियों को चलाते थे। यानी मुक़ाम अर्फ़ात से तवाफ़ के लिए उन्हें रवाना करते थे। कोई आदमी उन का खड़ा हो कर कहता था कि चल ऐ क़ौम सूफ़ा जब वो चलते तब वो कहता चल मटक चाल जब वो मटक चाल चलते तो तब तमाम लोगों को चलने की इजाज़त होती थी।

और सूफ़ा एक गिरोह का नाम भी था। जो सब क़बाइल में से मालूम-उल-नसब लोग थे वो जमा होते थे और आपस में ऐसा मेल मिलाप करते थे कि जैसे क़ौम सूफ़ा मज़कुरा बाला का बाहमी मेल मिलाप था। पस ये लोग आपको सूफ़ा की मानिंद बनाने की वजह से सूफ़ा कहलाते थे।

अजीज़ी ख़ंदफ़ (اجیزی خندف) के मअनी हैं कि चलो ख़ुशी और तकब्बुर की चाल मैंने इस का तर्जुमा मटक चाल किया है। चुनान्चे अब तक वहां तीन तवाफ़ रमल होती हैं। यानी बांकों की मानिंद मगर मुहम्मदी लोग ये मटक चाल फ़त्ह मक्का का

निशान बतलाते हैं। और क़दीम अरब, और मुतालिब से करते थे। ख़ंदफ़ (خندف) बमाअनी मटक चाल इन की एक पड़दादी का नाम था। जो इल्यास बिन मुज़िर की ज़ौजा (बीवी) थी और तायहना की वालिदा थी। वो एक दफ़ाअ मटक चाल जंगल में चली थी। जब ख़रगोश से ऊक के ऊंट भागे थे। उस वक़्त से उस के शौहर ने उनका नाम ख़ंदफ़ (خندف) रख दिया था और तायहना पड़दादा है सूफा ग़ौस का और सूफा ग़ौस से ये तमाम क़ौम निकली थी और अपनी जद्दे आला के नाम पर सब सूफा कहलाते थे। पस इस मटक चाल में वो अपनी दादी की सुन्नत पर कोई इशारा कहते थे और यही क़ौम तमाम अरब के लिए काअबा परस्ती में पेशवा और पूजारी थी। दीगर क़बाइल में से भी वो मालूम-उल-नसब लोग जो क़ौम सूफा की मानिंद आदात बनाते थे सूफा कहलाए। हासिल कलाम ये है कि सूफा ग़ौस एक बुतपरस्त आदमी था। इस्लाम से बहुत दिनों पहले उस की तमाम औलाद कई पुश्त तक सूफा कहलाई और दूसरे घरानों के लोग भी जो मालूम-उल-नसब थे सूफा कहलाए इसलिए कि सूफा ग़ौस की औलाद के नक़्श-ए-क़दम पर मेल मिलाप और काअबा के बुतों की परस्तिश करते और साल ब साल काअबा में जमा हुआ करते थे।

इस बयान से जो बिल्कुल सहीह है ज़ाहिर है कि, लफ़्ज़ "सूफ़ी" की असल, वही सूफा ग़ौस बुतपरस्त आदमी है उस से अव्वलन उसके औलाद "सूफा" कहलाई और उनके इक़तिदार के सबब ग़ैर लोग भी सूफा कहलाए और इस में क्या शुब्हा है कि उस जहालत के ज़माने में दरमियान उन बुत परस्तों के सूफ़ी लोग मुम्ताज़ थे वो ख़ुदा-परस्त समझे गए। इसलिए बाअज़ दीगर क़बाइल के लोग उनकी इक़तिदार (बड़ाई) करके सूफा हो जाते थे। वो समझते थे कि उनके अत्वार ख़ुदा-परस्ती में दुरुस्त हैं। जब इस्लाम का ज़माना आया और तमाम मुल्क अरब बज़ोर शमशीर मुसलमान किया गया और उन्हें मुहम्मदी शरीअत दी गई। उनसे पुरानी बुत-परस्ती के दस्तूर छुड़ाए गए। तो उन्हीं नौ-मुस्लिम लोगों में से अक्सरों के दिलों में क़ौम सूफा का ख़मीर मौजूद था। चुनान्चे अक्सर ज़ी इल्म सूफ़ी अब तक क़ाइल हैं कि हमारा तसव्वुफ़ इस्लाम से पहले था और इस्लाम में ये ताक़त ना थी कि वो ख़मीर उस के ज़हनों में से निकालता अब वो नोमुरीद सूफा लोग क्या कर सकते थे? अगर इस्लाम को छोड़ें तो मारे जाएं सूफा को छोड़ें तो बगमान ज़ैश हक़ीक़ी ख़ुदा-परस्ती से अलग हैं।

क़ियास चाहता है कि उस वक़्त ऐसे लोगों में बहुत काना पोसी हुई होगी और उनही की कानापोसी का वो नतीजा मालूम होता है जो कि आज तक सूफ़िया में मशहूर है कि एक इल्म सीना है तो दूसरा सफ़ीना है। एक ज़ाहिरी इंतिज़ामी शरीअत है जो मुहम्मद साहब क़ुरआन व हदीस में लाए हैं उस के पैरौ अस्हाब ए ज़ाहिर यानी

मुहम्मदी लोग हैं जो हक़ीक़त से बे-बहरा हैं। तो दूसरी बातिनी शरीअत है जो सूफ़िया में सीना ब सीना चली आती है। और ख़ुदा का विसाल इसी से होता है। मुहम्मदी शरीअत मुल्की इंतिज़ाम के लिए है ख़ुदा परस्ती की राहें जुदा हैं वो लायक़ आदमी को बड़ी आज़माईश के बाद सूफ़ी लोग बतलाते हैं और ये लोग अस्हाब ए बातिन हैं। और कुछ अर्से के बाद इस के साथ ये भी उड़ाया कि ये इल्म सीना मुहम्मद साहब से ही पहुंचा है ताकि कोई ये ना समझे कि ये सूफा ग़ौस की बात है। और मुहतसिब के कोड़े और क़ाज़ी के फ़तवे में कुछ तख़फ़ीफ़ हो। और अस्हाब ए ज़ाहिर में से जो कुछ माद्दा के शख़्स हों सूफ़िया में शामिल होना गुमराही ना समझें बल्कि जानें कि मुहम्मद साहब की असल हिदायत सूफ़िया के पास है मुहम्मद साहब अली के कान में डाल गए थे। हज़रत अली ने इमाम हसन व इमाम हुसैन और कुमैल बिन ज़ियाद और हसन बस्री को हिदायत खुफ़ीया की थी कि यही चार अशख़ास पीर-ओ-तरीकत हैं और इन्ही से ये नेअमत सीना ब सीना पीरों में चली है।

पस तमाम मुल्क में जिस क़द्र सूफ़ी पैदा हुए। सदहा शजरे अपने मुर्शिदों से लेके इन्हीं चार में से किसी पीर तक पहुंचते हैं। लेकिन नक़्शबंदिया कहते हैं कि हमारा बड़ा पीर अबू-बक्र सिद्दीक़ है उन को मुहम्मद साहब से इल्म बातिन पहुंचा था, और इस के सिलसिले से हमें पहुंचा है।

क़ियास और क़ौल बाला से ज़ाहिर है कि उनका असल मुर्शिद वही सूफा ग़ौस है क्योंकि क़ौम सूफा की असल बातें उनमें अब तक वैसे पाई जातीं हैं अक़ाइद और ख़यालात और अतवार-ए-रियाज़त वही हैं जो उन बुत परस्तों के थे। चुनान्चे इस किताब में उनके अत्वार का मुफ़स्सिल बयान होता है। इस वक़्त नाज़रीन को इतना मालूम हो जाये कि क़ामूस की इबारत में जो सूफा के कामों का ज़िक्र है। वही काम बईना ये सूफ़ी करते हैं।

वो साल-ब-साल काबे के मेले में जमा होते थे। ये साल-ब-साल क़ब्रों पर उर्स के लिए जमा होते हैं। वो मन-उफना-उल-क़बाइल (من افناء القبائل) थे। सहीह तर्जुमा इस इबारत का यही है कि सब क़बीलों में से मालूम-उल-नसब लोग थे ये सब सूफ़ी भी हर गिरोह में से मालूम-उल-नसबत होते हैं और शजरों से पहचाने जाते हैं कि कौन किस घराने का मुरीद है। अगर कोई अजनबी सूफ़ी आ जाता है तो पूछते हैं आप किस सिलसिले के हैं? वो कहता है कि क़ादरिया या चिश्तिया वग़ैरा हूँ। वो आपस में मेल मिलाप करते थे यहां भी वही हाल है हज़ार अहले तमाशा उर्स में आएं। असल गुमत सूफ़ियों ही की होती है। वो बुत पूजते थे ये क़ब्रों के क़दम चूमते हैं। वो काअबा का तवाफ़ करते थे। ये क़ब्रों का तवाफ़ करते हैं। वो आब-ए-ज़मज़म पीते थे ये चरना

मत चखते हैं। यानी वो पानी जो क़ब्रों के ग़ुस्ल ओस दो बालिशत के हौज़ में जमा रहता है। जो पीर की क़ब्र से पीरों की क़ब्रों की तरफ़ चूने से बनी रहती है वो काअबा के ग़लाफ़ चूमते थे ये क़ब्रों के ग़लाफ़ आँखों से लगाते वो बुतों से मदद मांगते थे ये मुर्दों से मांगते हैं। उनका एक आदमी पेशवाई करता था इन काभी एक सज्जादा नशीन पेशवा होता है। और ये ख़्याल जो अब तक उनमें है। कि तमाम वलीयों में ग़ौस बड़ा शख़्स होता है, इस की असल भी वही सूफा ग़ौस है। जो उन में जद्दे आला था और क्या ताज्जुब है कि इस का नाम या ग़ौस बुत से कुछ इलाक़ा रखता हो। जो उन बुत परस्तों में निहायत बड़ा देवता समझा गया था। अब फ़रमाए कि सहीह वजह तस्मीया (नाम रखने की वजह) क्या है।

4 फ़स्ल अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्मों के) सूफ़िया के बयान में

सूफ़िया की अक़्साम (मुख्तलिफ़ क़िस्में) दो तरह की हैं। अव्वल ख़ानदानों के एतबार से और दुवम उनकी बातिनी हालत के एतबार से। ख़ानदानों के एतबार से ये कैफ़ीयत है कि इस्लाम में जो 72 फ़िर्क़े इख़्तिलाफ़ राय से पैदा होते हैं। उनसे कुछ ही ज़्यादा फ़िर्क़े उनमें मशख़ीत के लिए पैदा हुए। ख़ानदानों के एतबार से कहते हैं कि वो जो चार पीर थे उनसे चौदह ख़ानवादे निकले हैं।

ज़ैदियाह, अयाज़िया, उहमियाह, हैबरियाह, चिश्तिया, अज्मियाह, तीफ़ोरीयह, करज़िया, सक़तियाह, जुनैदियाह, कर्दिनियाह, तुसियाह, सुहरवर्दिया, फिर्दोसियाह, फिर इन चौदह से और फ़िर्क़े इस क़द्र निकले कि मुसन्निफ़ लोग जमा नहीं कर सकते उनमें से बाअज़ के नाम ये हैं। क़ादरियाह, यसुवियाह, नक़्शबंदिया, नूरिया, शतारीह, ख़िज़्रूयाह, नज्जारियाह, ज़ाहिदियाह, अलज़ारियाह सफ़वियाह, ईदरूसियाह वग़ैरा। और मशरब क़लंदरियाह में से भी मद्रायाह रसूल शाही, नौशाही वग़ैरा क़िस्म क़िस्म के फ़क़ीर हिन्दुस्तान में फिरते हुए मिलते हैं। और अपने फ़िर्क़ों के नाम बतलाते हैं और इसी को ख़ूबी समझते हैं, कि हम फ़ुलां फ़िर्क़े के हैं। वो अपने फ़िर्क़े के नाम से रोटी कमा कर खाते हैं। और अक्सर उनमें महज़ जाहिल और नकारा सुस्त लोग हैं जो मेहनत करके खाना नहीं चाहते। ग़ैरों से ख़ुराक पाना और नशाबाज़ी के लिए कुछ दाम हासिल करना अपनी फ़क़ीरी का मंशा समझते हैं।

फिर सूफ़ी कहते हैं कि बाएतिबार बातिनी कैफ़ीयत के हमारे दर्मियान तीन क़िस्म के लोग हैं। वास्लान, मतोस्तान, मक़ीमान।

मक़ीमान वो सूफ़ी हैं जो अपनी दुनियावी कैफ़ीयत में क़ायम रहते हैं। अपनी बुरी हालत को छोड़कर मदारिज तसव्वुफ़ में तरक़्क़ी नहीं करते इन लोगों को मतसूफ़ा कहते हैं यानी छोटे सूफ़ी। ये लोग शिकम परवर और दुनियादार हैं। कपड़े रंगे हुए हाथ में तस्बीह मुँह में सुब्हान-अल्लाह वग़ैरा अल्फ़ाज़ बोलते, मक़बरों और पीरों की तारीफ़ें करते और उनके उर्सों या मेलों की तारीखें याद रखते और ख़त्म सुना के अच्छे खाने उढ़ाते और दिन रात पैसा पैदा करने की ऐसी फ़िक्र होती है जैसे ईमानदार ख़ुदा की तलाश करता है। देहाती नादानों की तरफ़ बहुत जाते हैं। और उनको मुरीद बनाते और उनका माल खा जाते हैं। और उनकी ताअलीम और सोहबत से और लोग इसी क़िस्म के पैदा होते रहते हैं। ये लोग चिल्लाकशी या विर्द ख़्वानी वग़ैरा कुछ काम भी अगर करते हैं तो मंशा यही होता है कि लोगों के दिल अपनी तरफ़ माइल करें। और जब कोई दौलतमंद ज़ी-इख़्तियार उनके पंजे में फंस जाता है और उनकी इज़्ज़त करता या कुछ ज़मीनदारी बख़्श देता है या मरने के बाद किसी का मज़ार बना देता है। तो ये बात उनके कमाल की दलील समझी जाती और इस का ज़िक्र पुश्तों तक चला आता है। कि फ़ुलां साहब ऐसे बुज़ुर्ग थे कि फ़ुलां अमीर ने उनको ये कुछ बख़्श दिया था। बाअज़ उनमें से ऐसे भी हैं जिनके पास कुछ असासा ज़मींदारी या किसी ख़ानक़ाह की आमद का जो उनके आबा ने इसी तरह पैदा किया था मौजूद है वह इज़्ज़त से रहते और ग़रीब सूफ़ियों को भी कुछ खिलाते और मेहमानदारी करते हैं, रोटियाँ तक़्सीम फ़रमाते हैं। और इस वजह से दूर दूर तक तारीफ़ें होती हैं और वो इस तारीफ़ से बहुत ख़ुश होते हैं। क्योंकि आमद बढ़ती और वली-अल्लाह मशहूर होते हैं। और इस के साथ जब ख़ुश-अख़्लाक़ी ज़ाहिर करते हैं। तब ज़्यादा रौनक होती है। लेकिन बाअज़ उनमें सख़्त दिल, मुतअस्सिब और शहवानी शख़्स हैं।

मतोस्तान वो हैं जो मक़ीमान के ऊपर और वास्लान के नीचे समझे गए हैं उन्होंने दुनिया को किसी क़द्र छोड़ा और तसव्वुफ़ के तरीक़ों को इख़्तियार किया है। लेकिन अभी तक ख़ुदा के पास नहीं पहुंचने कोशिश कर रहे हैं कि पहुंच जाएं इन्हीं का नाम सालकीन हैं।

मैं देखता हूँ कि ऐसे लोग सूफ़िया में कहीं कहीं नज़र आ जाते हैं। सो मक़ीमान में शायद पाँच ऐसे हों। इनमें कुछ तो ख़ुदा की मुहब्बत है जिस के सबब से इन्होंने जफ़ा कुशी इख़्तियार की है और कुछ अपना दुनियावी आराम छोड़ा है। इसलिए वो इज़्ज़त और मुहब्बत और हमनशीनी के लायक़ हैं। इनकी निस्बत मुझे यही अफ़्सोस है कि जिस राह पर वो चले जाते हैं। वो राह ख़ुदा से मिलने की नहीं

है। बेफ़ाइदा मशक़्क़त खींचते हैं। इन अत्वार (तौर तरीक़े) से जो उन्होंने इख़्तियार किए हैं, ख़ुदा को कभी ना पाएँगे। मैं उनकी मिन्नत करता हूँ कि मेरी ये बातें सुनकर ख़फ़ा ना हों, बल्कि फ़िक्र में पड़ जाएं। और ग़ौर करें कि जो कुछ इस किताब में बयान हुआ है सच है या नहीं।

इन मतोस्तान में से कई एक आदमी हमारे मसीहीयों की जमाअत में भी आ मिले हैं। और दीन-ए-मसीहीय्यत का उन्हें लुत्फ़ हासिल हुआ है। क्योंकि वो सच्चाई के भूके और रज़ियातों के थके-माँदे थे। जब वो मसीह के पास आए मसीह ने बमूजब अपने वाअदे मत्ती 11:28 उनके दिलों में आराम दाख़िल कर दिया। अब वो ख़ुदा का शुक्र करते हैं कि सूफ़ियों के जाल से निकले और पैग़म्बरों की जमाअत में आए और ख़ुदा को फ़िल-हक़ीक़त पाया और उस से फ़ज़्ल हासिल किया जो दिलों और ख़यालों में जलवागर हुआ है और तब्दील हो कर नए इन्सान हो गए हैं। अब पूरा यक़ीन है कि बाद इंतिक़ाल हक़ीक़ी आराम में पहुँचेंगे। क्योंकि इसी ज़िंदगी में ख़ुदा की क़ुदरत और मुहब्बत का हाथ अपनी तरफ़ देखते हैं। पस ये लोग उन सूफ़ी मतोस्तान को बहुत याद करते हैं जिनको ग़लती में पीछे छोड़ा है उनके के लिए दुआ-ए-ख़ैर करते हैं। कि ख़ुदा तआला उनको भी इस गिर्दाब में से ऐसा निकाले कि जैसा हमें निकाला है। क्योंकि वो जो पीछे रह गए हैं वो बकवासी और शरीर (बुरे) नहीं सिर्फ भूल हैं।

वासलान वो सूफ़ी समझे गए हैं जो कि इन मक़ीमान और मतोस्तान के गुमान में ख़ुदा से मिल गए हैं। तसव्वुफ़ या सुलूक की मंज़िलें तै करके मंज़िल-ए-मक़्सूद को पहुंचे हैं। यही बयान इस किताब में बड़ी बहस का है।

इसलिए मैं साफ़ साफ़ कहता हूँ कि ऐसे अश्ख़ास जिनको वासलान कहा जाये सूफ़िया में कभी हुए ना कभी होंगे। ये सूफ़ियों का वहम है जो वो कहते हैं हम में वासलान भी गुज़रे हैं।

और वो जो इनमें बड़े बड़े नामवर वली-अल्लाह मशहूर हैं। जिनके आलीशान मक़बरे बने हुए हैं। जहां मेलों और उर्सों के वक़्त मुरीदों और पीर ज़ादों और अवाम मर्द औरत का हुजूम और चराग़ों और ग़िलाफ़ों और चूरू नाच और हाल क़ाल और माह व सावं में पंखियों की धूम रहती है। ये सारी कैफ़ियतें दलाईल विलायत वासलान हक़ होने के शान नहीं हैं। ये तो पीरज़ादों की दुकानदारी है। अलबत्ता वो बुज़ुर्ग अपने अपने ज़माने में बतौर सूफ़िया ख़ुदा-परस्त और नेक होंगे लेकिन वासलान में से वो हरगिज़ ना थे। वो सब सुलूक ही में मर गए। हाँ उनके सुलूक में ज़्यादा इस्तिग़राक़ देखकर लोगों ने उन्हें वासलान में समझ लिया है। और उन्हें उड़ाया है ताकि वो

जाहिलों में से पूजे जाएं और पीरज़ादे हलवे खाएं। और उनके नाम से इज़्ज़त हासिल करें कि हम इतने बड़े शख़्स की औलाद में से हैं। आओ हमारे पीरों को हाथ लगाओ और नज़राना लाओ।

इस मुक़ाम पर ये सवाल लाज़िम है कि वासलान हक़ के क्या मअनी हैं और वो जो वासलान हैं क्योंकर पहचाने जाते हैं? पहले इस सवाल का तस्फ़ीया करो। फिर कहना कि कौन वासिल और कौन फ़ाज़िल है।

इस सवाल का जवाब सूफ़िया की बाअज़ तहरीरात से यूं बरामद होता है कि जो लोग हमा औसत (ہمہ اوست) के ख़्याल में पुख़्ता हो गए हैं। वही उनके गुमान में वासलान हैं गोया ख़ुदा में वस्ल हो गए हैं। और वो जो उनकी कुछ करामातें और मकाशफ़े मज़्कूर हैं वो अलामात-ए-विलायत हैं। और ये कि उनके अहद के बाअज़ लोग उनके मुतअक़ीद (अक़ीदतमंद) थे। और अब तक बहुत से लोग उनकी क़ब्रों पर जमा होते हैं और उनसे मिन्नत मानते और दरख़ास्तें करते हैं और अपनी मुरादें पाते हैं।

अगर वासलान हक़ के मअनी और अलामात कुछ और हों जिन्हें मैं ना समझा हूँ तो चाहिए कि सूफ़ी ख़ुद बयान करे। मैं तो उनकी किताबों के मुतालआ से ऐसा ही समझा हूँ, जैसा मैं ने ऊपर लिखा है।

और इस बयान की निस्बत यूं कहता हूँ कि गुज़श्ता तारीकी के ज़माने में वो बयान क़ुबूल हुआ करता था अब क़ुबूल नहीं हो सकता है। क्योंकि निहायत नाक़िस ख़्याल है। इस वजह से कि हमा औसत (ہمہ اوست) का ख़्याल फ़िल-उल-वाक़े एक बातिल वहम है। ख़ुदा तआला हरगिज़ हमा औसत (ہمہ اوست) की कैफ़ीयत में नहीं है। पस ये लोग यानी इनके औलिया अगर वासिल हैं तो हमा औसत (ہمہ اوست) के बातिल ख़्याल से वासिल हैं ना कि ख़ुदा से।

और वह जो उनकी करामातें मशहूर हैं। उनका अस्बात (सबूत) मुहाल है क्योंकि अगरचे करामतों के ज़हूर का औलिया अल्लाह से इम्कान है। तो भी कुछ क़ाएदे हम मसीहीयों और मुहम्मदी मुहद्दिसों के पास भी ज़रूर मौजूद हैं। जिनसे ख़बरों की आज़माईश करना अक़्लन वाजिब है ताकि साबित हो जाये कि किस क़िस्म की ख़बरें लायक़ एतबार होती हैं। उन्हीं क़वाइद वाजिबा की रू से मुहम्मदी मोअजज़ात की ख़बरें ग़ैर मोअतबर ठहरी हैं। और वही क़वाइद हैं जिनसे हर अहमक़ बुतपरस्त का मुँह करामतों के बारे में बंद किया जाता है। पस फ़र्ज़ है कि हम उन्हीं क़वाइद से उन वलीयों की करामतों की ख़बरों को भी परखें सक़ा (सहीह और मजबूत) रावियों की

तलाश करें और ख़बरों का तवातर देखें अगर हम ऐसा करें तो ये दफ़्तर के दफ़्तर करामतों के साफ़ उड़ जाते हैं। क्योंकि ये ज़ाहिर मुरीदों और ग़रज़मंद पीरज़ादों के बे-सरोपा ज़टिलेयात हैं। जो एक वक़्त में तस्नीफ़ हो गए और अब तक हर लल्लू पंजु से तस्नीफ़ होते चले जाते हैं।

बाइबल शरीफ़ के मोअजज़ात एक ख़ास मुराद पर और एक ख़ास नबुव्वत के साथ मुम्ताज़ हो कर मर्क़ूम हुए हैं और उनका वक़ूअ संजीदगी में है। व अल-रूस-उल-अशहाद हुआ है इसलिए सिर्फ वही मोअजज़ात एतबार के लायक़ हैं।

बाक़ी तमाम ज़मीन पर हर गिरोह के लोग जो कुछ करामातें अपने बुज़ुर्गों की सुनाते हैं एक भी नहीं है कि बाइबल के मोअजज़ात के सबूत की मानिंद अपने बयान का सबूत रखता हो।

मुहम्मद साहब क़ुरआन में एक ताअलीम दुनिया के सामने लाए हैं अगर वो ताअलीम ख़ुदा से साबित होती तो मुनासिब था कि ख़ुदा अपनी क़ुदरतों से इस पर गवाही देकर उसे साबित करता जैसे गुज़श्ता ज़माने में उसने बाइबल मुक़द्दस की निस्बत किया है। लेकिन ख़ूब साबित हो गया कि ख़ुदा ने क़ुरआनी ताअलीम पर कुछ गवाही नहीं दी। फिर इन सूफ़ी वलीयों की करामतों पर किस बात पर गवाही देता है आया तसव्वुफ़ पर या हमा औसत (ہمہ اوست) के बातिल ख़्याल पर या इन पीरों के हाल व क़ाल पर?

मोअजज़ात की वो पुर शान क़ुदरत जो कि ख़ुदा में मख़फ़ी (छिपी) है और इंतज़ाम-ए-फ़ित्री से बुलंद व बाला है जिसे ख़ुदा ने बड़ी संजीदगी की सूरत में बम्ज़ाव सबूत पैग़ाम गाहे-बा-गाहे ज़ाहिर किया है। क्या वो क़ुदरत ऐसी आम हो गई कि इन वलीयों ने सदहा करामातें चुटकी चुटकी में कर डालीं? क्या इन वलीयों पर भी ईमान लाना अहले दुनिया पर फ़र्ज़ है?

"धोका ना खाओ सूखी जड़ से सब्ज़ डालिया नहीं निकला करतीं"

रहे इनके मकाशफ़े और महलमात सो उनकी तरफ़ भी ग़ौर से देखो कि सिर्फ तुहमात (झूट) हैं। हक़ीक़ी मकाशफ़े जो ख़ुदा की तरफ़ से हैं बाइबल में मज़्कूर हैं। इनकी मानिंद कोई मुकाशफ़ा किसी वली का अगर किसी को मालूम हो तो बतला देता कि हम इस पर फ़िक्र करके कहें कि वो मुकाशफ़ा है या वहम है या सिर्फ एक ख़्याल है जो इन्सान से है।

और ये कहना कि इनके अहद के लोग उनके मुतअक़्क़िद (बंधे हुए) थे ये कुछ बात नहीं है। जैसे सच्चे मुअल्लिमों के मुतअक़्क़िद (बंधा हुए) दुनिया में हो गुज़रे हैं वैसे झूटे मुअल्लिमों के मुतअक़्क़िद भी हो गुज़रे हैं। ये दिखलाना चाहिए कि इनमें क्या था जिनके सबब से लोग मुतअक़्क़िद हुए थे?

और अब जो क़ब्रों पर लोग जमा होते हैं। इसका का सबब तो वही तसूवफ़ी बातिल ख़्याल हैं जो विरासतन इनमें चले आते हैं और पीर ज़ादगान की तरफ़ से कशिश भी है और वो जो मिन्नत मानते हैं इस का सबब इन्सानी बेईमानी है कि ख़ुदा को छोड़कर मुर्दों से दरख़्वास्त करते हैं मुसीबतज़दा जाहिल औरतें इस बला में ज़्यादा मुब्तला है। लेकिन क्या होता है क्या हर किसी की मुराद पूरी हो जाती है? हरगिज़ नहीं सब काम इंतज़ाम-ए-इलाही से होते हैं। क्योंकर कोई साबित कर सकता है कि फ़ुलां काम फ़ुलां पीर से हो गया है? और कि कौन कौन उमूर में पीर-परस्त कामयाब हैं? कि पीरों के मुन्किर वहां नाकामयाब रहे हैं बर-ख़िलाफ़ इस के ये देखते हैं कि वो लोग जो ज़िंदा ख़ुदा को छोड़कर ग़ैर माबूदों के दरवाज़ों पर भीक मांगते फिरते हैं कभी सैर नहीं होते बल्कि तमाम लानतें उनको घेरे रहती हैं और आख़िर हाय हाय करके बेईमान मर हैं।

हासिल कलाम ये है कि सिर्फ सालकीन और मतसूफ़ीन सूफ़िया में हुए हैं और वासलान हक़ कभी उनमें नहीं हुए और जिनको उन्होंने वासलान-ए-हक़ समझा है वो फ़िल-हक़ीक़त वासलान-ए-हक़ ना थे। वो अपने बातिल ख़यालात में मुस्तग़र्क़ (डूबे हुए) थे, और इस इस्तिग़राक़ में उनकी हालत दिगर-गूँ देखकर उन लोगों ने उनको वासलान समझा है।

5 फ़स्ल वली और विलायत के बयान में

लफ़्ज़ वली (ولی) मुसद्दिर वला (ولا) से मुश्तक़ है। इस के मअनी हैं कि मुहब्बत रखने वाला और इस की जमा औलिया है। विलायत एसी लफ़्ज़ वला (ولا) से दूसरा मुसद्दिर है जिसके मअनी दोस्ती और तक़र्रुब बंदा बख़ुदा के हैं।

हर क़ौम और हर फ़िर्क़े में बाअज़ ऐसे अश्ख़ास भी मिलते हैं। जो कुछ-कुछ मुहब्बत अल्लाह तआला से रखते हैं। ख़्वाह दानिशमंदी या नादानी के साथ लेकिन वो सब वली-अल्लाह नहीं समझे जाते।

वली अल्लाह में कुछ और भी मतलूब है जिससे वो सच्चा वली-अल्लाह समझा जाये। पस किसी ने कहा कि वली वही है जो ख़ुदा से मुहब्बत रखता है। यानी दोनों में दोस्ती हो।

इस मज़्मून पर किसी ने कहा कि ये भी वली की पूरी तारीफ़ नहीं है। क्योंकि ख़ुदा की मुहब्बत पैदाइश और रिज़्क़ रसानी और हिफ़ाज़त और दुनियावी बरकत में काफ़िरों और मोमिनीन की निस्बत बराबर ज़ाहिर है और दोनों क़िस्म के लोगों में से बाअज़ हैं जो ख़ुद भी मुहब्बत का दम भरते हैं। पस जिनमें मुहब्बत तो है क्या वो सब वली हैं? हरगिज़ नहीं।

मौलवी अब्दुल ग़फ़ूर नफ़हात (نفحات) के हाशिये में लिखते हैं कि विलायत की दो किस्में हैं। आम्मा और ख़ास्सा विलायत आम्मा सब मोमिनीन अहले-इस्लाम को हासिल है। ख़ुदा की मेहरबानी से ख़ुदा के क़रीब हैं। जिसने उन्हें कुफ़्र की तारीकी से निकाला और ईमान के नूर में शामिल किया।

विलायत ख़ास्सा मुक़र्रबान दरगाह के लिए मख़्सूस है। जिसके मअनी हैं बंदे का ख़ुदा में फ़ना होना। बनिस्बत ग़ैर चीज़ों के और ख़ुदा में बक़ा होना बनिस्बत हक़ के।

मैं समझता हूँ कि ये बयान भी मौलवी अब्दुल ग़फ़ूर का दुरुस्त नहीं है। अव्वलन विलायत की तारीफ़ सहीह करना चाहिए फिर तक़्सीम जब कि हम उनके बयान से विलायत ही को नहीं समझे कि वो क्या चीज़ है? तो हम उस की किस्में क्योंकर मान सकते हैं?

और ये जो विलायत आम्मा में मुहम्मदी मोमिनीन की निस्बत ख़ुदा की मेहरबानी का ज़िक्र किया गया है। कि उसने उन्हें कुफ़्र से निकाला और नूर ईमान में शामिल किया। ये मुक़ाम बहस तलब है पहले ये फ़ैसला होना चाहिए कि कुफ़्र क्या है? और मुहम्मदी ईमान क्या है? और इस में क्या रोशनी है जिस को वो नूर कहते हैं? और ये कि खुदा ने इन को इस नूर में शामिल किया है या तल्वार ने? या ये कि मज्बूरी से मुसलमान शूदा लोगों के घरों में पैदा हो कर इस्लाम के नूर में शामिल हुए और इस शमसूल को इलाही फेअल क़रार देते हैं जब तक ये सब बातें साफ़ ना

हो जाएं हम क्योंकर क़ाइल हो सकते हैं, कि ख़ुदा की ख़ास मेहरबानी उन पर हुई है? और कि ये क़ुर्बत (नज़दिकी) की एक सूरत है? पस ये विलायत आम्मा तवज्जा के लायक़ शैय नहीं है और इस से दीन-ए-मुहम्मदी का कुछ जलाल ज़ाहिर नहीं हो सकता।

और विलायत ख़ास्सा की जो ये तारीफ़ की है कि निस्बत ग़ैर चीज़ों के फ़ना होना और बनिस्बत हक़ के ख़ुदा में बक़ा हासिल करना अलबत्ता ये बात फ़िक्र की है कि ये क्या है?

ये बात बह तब्दील इबारत नफ़हात (نفحات) में यूं मर्क़ूम है कि वली वो है। जो अपने हाल की निस्बत फ़ना हो जाये और मुशाहिदा हक़ की निस्बत बाक़ी रहे और तमाम कुतुब तसव्वुफ़ में ऐसी ही तारीफ़ें वली की लिखी हैं। जिसका हासिल ये है कि अज़ ख़ुद फ़ना बख़ुदा रसीदा शख़्स वली है। लेकिन फ़िल-हक़ीक़त ऐसा शख़्स वली नहीं हो सकता। यानी वो जो अपने हाल की निस्बत फ़ना हो जाये वो तो पागल या दीवाना या मुख़ब्बत-उल-हवास है। फिर मुशाहिदा हक़ की निस्बत बाक़ी रहना इस का सबूत उस शख़्स की निस्बत क्योंकर हो सकता है? क्योंकि अज़-ख़ुद-रफ़्तगी जो उस में है वह हवास में तारीकी का निशान है और जब इस में तारीकी और ख़लल है तो रूह में ख़ुदा से दूरी साबित होगी। ना कि क़ुर्बत (नज़दिकी) क्योंकि ख़ुदा नूर है उस की क़ुर्बत (नज़दिकी) आदमी को मुनव्वर और रोशन करती है ना कि पागल।

फिर सूफ़िया कहते हैं कि विलायत और नबुव्वत दो हालतें हैं बातिनी हालत का नाम विलायत है और ज़ाहिरी हालत हिदायते ख़ल्क़ का नाम नबुव्वत है। इसलिए हर नबी ज़रूर वली भी है लेकिन हर वली नबी नहीं है। बाअज़ वलीयों को नबुव्वत का ओहदा भी बख़्शा गया है। वो वली नबी कहलाते हैं और बहुत वली हैं जो नबी नहीं हैं मगर अंदरूनी कैफ़ीयत इन सब नबियों और वालियों की यकसाँ हैं।

मैं इस बात को मानता हूँ कि दरहक़ीक़त विलायत एक बातिनी कैफ़ीयत है मगर कलाम इस में है कि वो किस क़िस्म की कैफ़ीयत है? और वह कौन से निशान हैं जिनसे उस कैफ़ीयत को पहचान कर किसी को वली क़रार दे सकते हैं? इस का फ़ैसला अब तक सूफ़ियों से नहीं हुआ और ना हो सकता है। तो भी उन्होंने बाअज़ आदमीयों को नाहक़ वली समझ लिया है और हमेशा चंद अहमक़ आदमी मिलकर किसी ना किसी आदमी को वली मशहूर कर देते हैं। मैंने जहां तक इनकी किताबों में फ़िक्र किया है। मुझे यही मालूम हुआ कि ये सूफ़ी ना हक़ीक़ी नबी को पहचानते हैं और ना ही हक़ीक़ी वली से वाक़िफ़ हैं। जिस क़िस्म के लोग उनमें ज़ाहिर हुए हैं उन्हीं

की कैफ़ीयत पर ग़ौर करके उन्होंने नबुव्वत और विलायत का बयान किया है। उनके पास ख़ुदा का कलाम नहीं है। कि उन्हें रोशनी बख़्शे और राह-ए-रास्त दिखला दे उनके पास सिर्फ आदमीयों के अक़्वाल हैं और वो भी नाक़िस अक़्वाल और क़ुरआन है जो इन्सान का कलाम है और हदीसें हैं जो कि नाकारा बातें हैं ना उनके दर्मियान कोई नबी बरहक जाहिर हुआ और कोई सच्चा दिल पैदा हुआ। इसलिए वो ग़लती में फंसे हुए हैं।

मालूम हो जाये कि सच्चा वली-अल्लाह वो शख़्स है जो सहीह तौबा और बरहक़ ईमान के बाद मुहब्बत इलाही में तरक़्क़ी करता और ख़ुदा की मर्ज़ी ख़ुदा के कलाम से दर्याफ़्त करके अमल में लाता है और ख़ुदा के हुक्मों को चिमटा रहता है वो गुनाह की निस्बत फ़ना और रास्तबाज़ी की निस्बत बक़ा का रुत्बा हासिल करता है। ऐसा ही शख़्स ख़ुदा का मुक़र्रब होता है और निशान क़ुर्बत (नज़दिकी) जो अव्वलन ख़ुद उस पर ज़ाहिर होते हैं। ये हैं कि उस की रूह में एक नई ज़िंदगी और रोशनी और ताज़गी अल्लाह की तरफ़ से आ जाती है और इस को हक़ीक़ी इत्मीनान हासिल होता है सानया जो निशान-ए-क़ुर्बत (नज़दिकी) ग़ैरों पर ज़ाहिर होते हैं ये हैं कि इस शख़्स के अफ़्आल और अक़्वाल और सब हरकात व सकनात उसी नई ज़िंदगी और रोशनी और ताज़गी व इत्मीनान के मुनासिब ज़ाहिर होते हैं ये हैं इस से लोग पहचानते हैं कि ये मर्द-ए-ख़ुदा है।

और ये कुछ ज़रूरी नहीं कि उस से करामातें ज़ाहिर हों। अलबत्ता हो सकता है कि कभी कोई करामत का काम भी अगर ख़ुदा चाहे तो उस से ज़ाहिर हो जाये और ये भी कुछ ज़रूर नहीं कि लोग उस के पीछे दौड़ें या उस की क़ब्र परस्ती करें या उस के क़दम पकड़े अगर वो ऐसे काम लोगों को करने दे तो वो ख़ुदा का आदमी नहीं है।

हाँ उसके बाअज़ नेक नमूने अगरचे हैं तो लोग इख़्तियार कर सकते हैं और सोच सकते हैं कि उसने ख़ुदा की इताअत और ख़िदमत क्योंकर की हम ऐसे ही करें। उसने ख़ुदा की तरफ़ दिल लगाया हम भी ख़ुदा की तरफ़ दिल व जान से मुतवज्जा हों। ख़ुदा ने उस पर फ़ज़्ल क्या हम पर भी फ़ज़्ल करेगा।

मसीही वलीयों की कैफ़ीयत और मुहम्मदी वलीयों की कैफ़ीयत में ज़मीन आस्मान का फ़र्क़ है। अगर कोई मुहम्मदी बाइंसाफ़ इस मुआमले पर ग़ौर करें तो उसे मालूम हो जाएगा। सच्चे वली अल्लाह सिर्फ़ मसीहीयों में गुज़रे हैं और अब ज़िंदा भी मौजूद हैं।

6 फ़स्ल इन सूफ़ी वलीयों के इख़्तयारात के बयान में

सूफ़िया की किताबों में इन वलीयों के बड़े बड़े इख़्तयारात का ज़िक्र है जिस से ख़ूब मालूम हो जाता है कि ये फ़िर्क़ा कहाँ तक नादान है कि गुज़श्ता ज़माने के लोग कहाँ तक सादा-लौह थे जो ऐसे ख़यालों को मानते थे। इस वक़्त कोई दानिशमंद ऐसी बातों को हरगिज़ क़ुबूल ना करेगा। अनवार-उल- आरफीन[2] (انوار العارفین) सफ़ा 14 में लिखा है कि :-

خداتعالی رااولیا اندکہ ایشانرا بدو ستی وولایت مخصوص گردانیدہ است ووالیان ملک وے اند کہ یہ بندگی برگزیدہ است ایشانراو نشانہ اظہار فعل خود گردانیدہ است وامرا یشانراوالیان عالم گردانیدہ از آسمان باران بابرکت اقدام یشان آید

और सफ़ा 100 कशफ़-उल-महजुब (کشف المحجوب) से मन्क़ूल है :-

از آسمان باراں یرکت ایشان آبدواز زمین نباتات بصفااحوال ایشان روبدو برکا فران مسلمانان نصرت باہمت ایشان یابند

ऐसे ऐसे बयान इनकी किताबों में इस कस्रत से हैं कि गोया ख़ुदा ने अपनी सारी ख़ुदाई का इख़्तियार इन वलीयों के हाथ में दे रखा है और सारे जहान का बंदो-बस्त यही लोग कर रहे हैं। ये महज़ ग़लत और गुमराही का ख़्याल जाहिलों के दिल क़ब्रों कि तरफ़ खींचने के लिए क्या हैं।

क़ुरआन में ऐसी बातों का कुछ ज़िक्र नहीं है बल्कि वहां कुल इख़्तियार ख़ुदा के हाथ में बतलाया गया है और सब को नाचार साबित किया गया है। सिर्फ सूफ़िया की किताबों में ऐसी बातें हैं ऐसी ही बातों से पीर परस्ती और क़ब्र परस्ती ने रौनक पाई है यहां तक कि ख़ुदा-परस्ती की जगह में पीर परस्ती क़ायम हो गई है। हज़ारों मुसलमान मर्द और औरत ऐसे हैं कि अपनी मुसीबतों और तकलीफों के वक़्त ना कि ख़ुदा को बल्कि पीरों को पुकारते हैं। कश्मीर में एक घर के दर्मियान आग लगी तमाम अहले-मुहल्ला मर्द और औरतें छाती पिटते और जल्द जल्द बोलते थे। ऐ पीर

---

2 انوار العارفین

दस्तगीर बचा ! वहां एक ईसाई मर्द मौजूद था, कहा ऐ कमबख़्त लोगों पानी डालो पीर साहब नहीं बचा सकता बमुश्किल पानी डलवाया तब आग बुझी। इन्साफ़ कीजीए कि ये हक़ीक़ी बुत-परस्ती है कि नहीं और ये बुत-परस्ती उन्हीं बातिल ख़्याल से निकली है जो सूफ़ियों ने इन वलीयों के इख़्तियार के बारे में तस्नीफ़ की है।

मैं पूछता हूँ कि ये मुहम्मद साहब की ताअलीम है या सूफ़िया की? अगर मुहम्मद साहब की ताअलीम है तो उन्होंने ख़ुदा की इज़्ज़त आदमीयों को दी है और पुराने बुत हटा कर नई क़िस्म के बुत क़ायम किए हैं और अगर सिर्फ सूफ़िया की बातें हैं तो फ़रमाएं कि ऐसे ख़यालात के शख़्स मुहम्मदी समझे जाएँगे या मुशरिक? फिर ऐसे ख़यालों के आदमीयों को सूफ़ी साफ़-दिल कहोगे या नापाक दिल का आदमी समझोगे? ये पीर लोग जो दिहात में दौरा करते और मुरीद बढ़ाते फिरते और कहते हैं कि हम ख़ल्क़-उल्लाह को हिदायत करते हैं वो क्या सिखलाते फिरते हैं यही कि फ़ुलां पीर साहब ने फ़ुलां शख़्स की यूं मदद की थी और फ़ुलां औरत ने वहां क़ब्र से यूं मुराद पाई थी फिर यह भी कहते हैं कि सब कुछ ख़ुदा से है।

7 फ़स्ल मज्ज़ूब (مجذوب) (मस्त, मलंग) वलीयों के बयान में

सूफ़ी समझते हैं कि बाएतबार अक़्ल व होश और चाल चलन के वलीयों की तीन किस्में हैं। अव्वल मज्ज़ूब (मस्त, मलंग), दुवम क़लंदर, सोइम सालकीन।

जज़ब के मअनी हैं खींचना और मज्ज़ूब के मअनी हैं खींचा हुआ शख़्स यानी दुनिया से ऐसा खींचा गया कि दुनिया का कुछ होश ना रहा नंगा फिरता, बकता, रोता और नेक व बद में तमीज़ नहीं करता जैसे ये सब पागल गलीयों में फिरते हैं पागल ख़ानों में क़ैद हैं।

लेकिन सब पागलों को सूफ़ी लोग वली नहीं समझते। बाअज़ पागल उनके गुमान में मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) हैं। जिनमें उन्हें कुछ क़ुदरत नज़र आती है। मसलन उनमें कुछ ग़ैब दानी की रूह हो, या ज़ंजीरों में जकड़ा जाये और उन्हें तोड़ डाले, या किसी के हक़ में कुछ बात कहे और वो पूरी हो जाये तो ऐसे पागलों को मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) समझते हैं और आला दर्जे का वली बतलाते हैं लेकिन ये भी कहते हैं कि मजज़बूं से फैज़-रसानी का काम नहीं होता है तो भी मैंने अपनी गुज़शता उम्र में अक्सर शरीफ़ मुहम्मदियों को मजज़बूं के पीछे बहुत सर-ए-गिर्दाब देखा है और उनका

अंजाम यही हुआ कि पागलों के पीछे दौड़ के ख़ुद पागल हो गए और उनकी ख़ाना-ख़राबियाँ हुईं।

ग़ौर करने से मालूम हुआ है कि बाअज़ आदमी किसी बीमारी के सबब से पागल होते हैं और बाअज़ में कोई बद रूह समा जाती है और वो शैतान के क़ब्ज़े में आ जाते हैं हम उन्हें शैतान के मक़बूज़ (यानी क़ब्ज़े में) समझते हैं। सूफ़ी उन्हें अल्लाह के मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) कहते हैं।

जनाब मसीह को भी एक सख़्त मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) मिला था देखो (मरक़ुस 5:1 से 15) और पौलुस रसूल को भी एक लड़की मिली थी जिसमें ग़ैब दानी की रूह थी (आमाल 16:16 से 18) अगर सूफ़ियों को ये आदमी मिलते तो कितने बड़े वली समझे जाते और उनके आलीशान मज़ार अब तक क़ायम रहते।

ख़ूब याद रहे ऐसे लोग ख़ुदा की तरफ़ मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) नहीं होते बल्कि शैतान की तरफ़ मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) होते हैं, और उन से जो बाअज़ करामातें इनके गुमान में ज़ाहिर हो जातीं हैं अगर फ़िल-हक़ीक़त हों तो शैतानी क़ुदरत से होंगी।

कशिश इलाही तो एक बड़ी चीज़ है जो आदमी के दिल को ख़ुदा की तरफ़ खींचती है और वो फ़ज़्ल का निशान है। मगर जो कोई सच्चे ख़ुदा की तरफ़ खींचा जाता है वह ज़्यादा होशयार और रोशन होता है वो ख़ुदा और आदमीयों के हुक़ूक़ ख़ूब पहचानता है और ख़ुदा के हुक्मों पर मज़बूत और क़ायम हो जाता है ताकि पागल मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) इस बात पर ख़ूब फ़िक्र करें।

8 फ़स्ल क़लंदरों (قلندروں) के बयान में

लफ़्ज़ क़लंदर (قلندر) की असल कलंदर (کلندر) या ग़लन्दर (غلندر) है मअनी कुंदा ना-तराशीदा (जाहिल) लेकिन बोल-चाल में बे शराअ शुहदद को और बंदर या रीछ नचाने वाले को और बाज़ीगर को और मगरे शुहदद भंगड़ चरसी वग़ैरा को भी क़लंदर कहते हैं जैसे दिल्ली में जामा मस्जिद के शुहदद या बाअज़ तकीयों में कोंडी सोंटे लिए हुए बाअज़ लूंगारे नारा-ज़न नज़र आते हैं और या अली मदद बोलते हैं ये सब क़लंदर हैं।

सूफ़ी समझते हैं कि बाअज़ क़लंदर वली अल्लाह हैं और वो शरीर (बदमाश) और लुच्चे नहीं लेकिन उनका मशरब (मज़हब, मिजाज़) क़लंदरियाह है। वो इश्क़बाज़

और आज़ाद हैं। वो हमा औसत (ہمہ اوست) का दम भरते हैं और शराअ मुहम्मदी के ताबेअ नहीं होते उनमें से एक क़लंदर का ये शेअर है :-

ماز دریائیم دریائیم زماست این سخن داندکسی کو آشنا ست

शाह ख़िज़र रूमी पहला क़लंदर है जो रोम से हिन्दुस्तान में आया था। वो किसी का मुरीद और चेला ना था क्योंकि क़लंदर लोग किसी के मुरीद नहीं होते ना किसी पीर की परवाह करते हैं वो सोंटे बाज़ ज़बान दराज़ आज़ाद नारा-ज़न होते हैं। सूफ़ियों का उनसे दम बंद है।

जब ये ख़िज़र रूमी क़लंदर दिल्ली में आया तो उस वक़्त दिल्ली के क़ुतुब साहब बावह फ़रीद के पीर मुर्शिद ज़िंदा थे। इस क़लंदर ने इरादा किया कि हज़रत की ख़िदमत में जाये और उनका मुरीद हो क़ुतुब साहब ने जब ये सुना तो मुरीदी का शिजरा कल्ला उस के डेरे ही पर भेज दिया और दूर ही से रुख़स्त किया उस की आज़ाद तबा से डर गए।

हज़रत नेअमत उल्लाह वली ने अपने एक रिसाले में लिखा है कि पूरा सूफ़ी जब अपने मक़्सद को पहुंच जाता है तो तब क़लंदर होता है। क़लंदर हक़ हक़ करता है क़लंदर का इल्म शुहूद है क़लंदर का अमल महव (खोया रहना) है क़लंदर की राह-ए-इश्क़ है। क़लंदर का दीन अना है। क़लंदर की दुनिया तौहीद है।

फिर ये क़लंदर लोग एक ही क़िस्म के नहीं हैं। बल्कि कई एक क़िस्म के लोग उन में शामिल हैं कलंदरियाह एक मशरब ही मशरब तसव्वुफ़ से अलग इसी में बानवा, रसूल शाही, मदारी नौशाही वग़ैरा क़िस्म के फ़क़ीर शामिल हैं और सब के सब अरकान-ए-इस्लाम से अलग रहते हैं और उन में बाअज़ शरीफ़ व ख़वांदा अश्ख़ास भी होते हैं। मसलन एक नज्म उद्दीन क़लंदर हैं एक महमूद क़लंदर हैं लखनऊ में एक सय्यद ग़ुलाम महमूद क़लंदर हैं मुरादाबाद में एक शहबाज़ क़लंदर हैं सिंध में लेकिन सब क़लंदरों में नामी गिरामी शरीफ़ उद्दीन बू अली क़लंदर हैं। जिनका असली मज़ार पानीपत में है। और दो नक़्ली मज़ार हैं। एक बोडी कहड़े में और दूसरा करनाल में मुसलमान समझते हैं कि ये बुज़ुर्ग साहब-ए-करामात थे। किताब सैर-उल-कताब (سیر الاقطاب) सफ़ा 190 में लिखा है कि :-

ये शख़्स साहब-ए-इल्म और पार्सा आदमी थे और इमाम-ए-आज़म अबू हनीफा कुफ़ी की औलाद में से थे। इनके आबा व अजदादा पानीपत में रहते थे और ख़ुद ये

शख़्स दिल्ली में क़ुतुब साहब की लाठ के नीचे बैठ कर किताबों का दर्स तालिब-ए-इल्मों को दिया करते थे क्योंकि उस ज़माने में दिल्ली वहां आबाद थी जब ख़ुदा ने उनको अपनी तरफ़ खींचा तो तब उन्होंने अपनी सब किताबें दरिया में फेंक दी और क़लंदर हो कर पानीपत में चले आए। फ़ारसी में उनकी एक मसुनवी मशहूर है और उस के मज़ामीन आली हैं और उनके ख़्याल की जोलानी और नीयत की पाकीज़गी का इस से ख़ूब इज़्हार होता है। मगर वो किताब क़लंदर होने से पहले की है। क़लंदर हो कर तो वो बेहोश से हो गए थे। इस्लाम को दिल से निकाल दिया था और किताबों को दरिया में फेंक दिया था नाकारा समझ कर लड़कों पर आशिक़ होने लगे थे। पहले जलाल उद्दीन पर आशिक़ हुए जो मख़दूम साहब हैं। फिर मुबारिज़ ख़ान पर आशिक़ हुए जिन का मज़ार उनके मज़ार के अंदर है। मैं हरगिज़ हरगिज़ उस आदमी की निस्बत बदगुमान नहीं हूँ मगर समझता हूँ कि किस क़िस्म का जुनून हो होगा।

और वो लोग जो कहते हैं कि ये साहिबे करामात थे अगर फ़िल-हक़ीक़त ऐसे हों तो क्या उनकी करामतों से इस्लाम की ख़ूबी ज़ाहिर होगी? हरगिज़ नहीं बल्कि ये साबित होगा कि जब तक कोई मुसलमान इस्लाम को ना छोड़े और इस की किताबों के ख़यालात को दिल से निकाल कर ना फेंके तब तक बाबरकत नहीं हो सकता और तसव्वुफ़ की ख़ूबी भी उनकी हालत से साबित नहीं हो सकती क्योंकि वो सूफ़ी साहिब-ए-सुलूक ना थे बल्कि क़लंदर थे। वो बहालत-ए-इस्लाम ख़ुदा के तालिब थे। शायद ख़ुदा ने उन पर किसी तरह से ज़ाहिर किया हो कि इस्लाम को छोड़ना चाहिए। तब बरकत मिलेगी पस उन्होंने फ़ौरन इस्लाम को छोड़ा और नाराज़ हो कर किताबों को फेंक दिया।

यही हाल रसूल शाह नामी एक शख़्स का अलवर में हुआ जिससे रसूल शाही फ़िर्क़ा निकला है। इस शख़्स ने दीन-ए-मुहम्मदी को बिल्कुल छोडा तब कुछ साहब-ए-तासीर हुआ और अनवार-उल-आरिफिन[3] 603 सफ़हे में इस का मुसन्निफ़ कहता है कि मैं और हाजी अता हुसैन जब दिल्ली में आकर उस मकान में उतरे जहाँ रसूल शाह की बहालत-ए-ज़िंदगी की नशिस्तगाह थी तो उस मकान की तासीर से हमारे दिल में ये ख़्याल आया कि दाढी मुंडवाना चाहीए बईअना इताअत-ए-मुहम्मदी के छोडने का इशारा हमारे दिलों में हुआ पस हम इस मकान से तौबा तौबा करके भागे।

3 http://www.tasavof.ir/books/download/farsi/tazkareh/anvarol-arefin.pdf

इसी रसूल शाह का ख़लीफ़ा फ़िदा हुसैन नामी शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब के अह्द में दिल्ली के दर्मियान एक मशहूर बेशराअ फ़क़ीर था। मुहम्मदी दीन के ख़िलाफ़ था मुसलमान उसे काफ़िर कहते थे। उन्हीं दिनों में पानीपत के दर्मियान एक मुसलमान बुज़ुर्ग ज़ी इल्म सफ़ैद रेश मुतशर्रे हलीम मिज़ाज हाफ़िज़ मानी नाम रहते थे। उनकी मस्जिद आज तक मुहल्ला अफ़ग़ान में हाफ़िज़ मानी की मस्जिद मशहूर है। मैं इमाद-उद्दीन लाहिज़ उस वक़्त छोटा लड़का था। मैंने बार-बार इस बुज़ुर्ग हाफ़िज़ को देखा कि मस्जिद की इस दीवार पर जो शुमाल मस्जिद में सड़क की तरफ़ है बैठे हुए किसी किताब का मुतालआ किया करते और चुपके चुपके आँसू पोंछा करते थे। बड़े हो कर मैंने सुना कि मौलाना रुम की मसुनवी पढ़ा करते थे और उस के मज़ामीन में ग़र्क़ हो जाते थे ग़रज़ इन हाफ़िज़ साहब को क़ुरआन के लफ़्ज़ (हुवा ज़ाहिर) पर शक पड़ गया और किसी तरह उनकी तसल्ली ना होती थी। तसल्ली के लिए शाह अब्दुल अज़ीज़ साहब के पास दिल्ली में गए लेकिन तसल्ली ना हुई। आख़िर इस बे शराअ फ़िदा हुसैन ने कहला भेजा कि ऐ बाबा हाफ़िज़ इधर आ जो कुछ मौलवी नहीं बतला सकते मैं बतलाऊँगा तब हाफ़िज़ साहब उनकी ख़िदमत में हाज़िर हुए। उस ने उनको हमा औसत (ہمہ اوست) की ताअलीम दी और शुहूदी बना दिया। हाफ़िज़ साहब की तसल्ली हो गई। क्योंकि मौलवी रुम की मसुनवी से ये ख़मीर ज़हन में पुख़्ता हो रहा था तब फ़िदा हुसैन ने कहा कि आपने अपना मतलब पा लिया अब अपने घर को जाएं। हाफ़िज़ साहब ने कहा कि मैं ना जाऊँगा, जब तक आप मुझे अपना चेला ना बनाएँ। फ़िदा हुसैन ने कहा कि ये सफ़ैद दाढ़ी और दीने मुहम्मदी की सूरत हमें बुरी मालूम होती है। अगर हमारा चेला होना मंज़ूर है तो हमारा तरीक़ा इख़्तियार करो हाफ़िज़ साहब ने ये मंज़ूर किया और अजीब शक्ल के आदमी बन कर पानीपत वापिस आए थे। यहां के मुसलमानों ने उन्हें बहुत तंग किया। लेकिन वो मौत तक इसी हाल में रहे और वो हुज्रा जो मस्जिद में कुवें के पास है उसी में हमेशा फ़क़ीरों के लिए भंग तैयार रहती थी। मगर हाफ़िज़ जी नहीं पीते थे और जो कोई दिल्ली से आता था उस को सज्दा करते थे। एक दफ़ाअ मेरे वालिद दिल्ली से उनके पास गए तो हाफ़िज़ जी ने उनको भी सज्दा किया था। मैं नहीं जानता कि हाफ़िज़ जी साहब ने क्या पाया था, मगर इतना जानता हूँ कि शराअ मुहम्मदी को छोड़ा था, तब दिल में तसल्ली थी।

इसी तरह बुल्ले शाह नाम पंजाब में एक मशहूर दरवेश गुज़रा है। वो भी मुहम्मदी दीन के ख़िलाफ़ बोलता था। उस के पास एक शख़्स गया कि ख़ुदा की राह दर्याफ़्त करे क्योंकि वो मशहूर वली था और ये जो गया नव मुस्लिम था। औरंगज़ेब के अह्द में हिंदू से मुसलमान हुआ था। जा कर कहा कि या हज़रत मुझे ख़ुदा की

राह बताएं। बल्ले शाह ने कहा था कि अगर ख़ुदा से मिलना था तो मुसलमान क्यों हुआ था? अब अगर मुसलमानी के ख़यालात को छोड़े तो ख़ुदा को पा सकता है और जो बातें बुल्ले शाह इस्लाम की निस्बत उस शख़्स से कहीं तो मैं अपनी इस किताब में बयान नहीं कर सकता। तहज़ीब के सबब से हाँ वो सब बातें एक किताब में कलमबंद हैं। जो दीवान बूटा सिंह साहब के पास लाहौर में देखी थी।

हासिल कलाम ये है कि इस क़िस्म के लोग सब के सब कलंदरियाह मशरब (मज़हब, मिजाज़) के हैं और इन्ही लोगों की करामातें हिन्दुस्तान में ज़्यादा-तर मशहूर हैं और मुसलमान लोग बेफ़िक्री से उनको अपनी क़ौम के औलिया इक़रार देते हैं। बिलफ़र्ज़ उनसे अगर कोई करामातें हुई भी हों तो क़लंदरों की करामतों से मशरब (मज़हब, मिजाज़) कलंदरियाह का हक़ होना साबित होगा और भंगड़ों की करामतों से भंग नोशी की शान ज़ाहिर होगी ना इस्लाम की। पस अब मालूम हो गया कि मजज़बूं और क़लंदरों को इस्लाम से कुछ इलाक़ा नहीं है सूफ़ी लोग मेहरबानी करके उन लोगों की बुज़ुर्गी और करामतों का ज़िक्र हम मसीहीयों के सामने ना क्या करें, क्योंकि उनकी बुज़ुर्गी से इस्लाम की ख़ूबी साबित नहीं हो सकती हाँ वो जो अपने आपको मुहम्मदी कहते हैं और सालकीन कहलाते हैं। अगर बवसीला इस्लाम और बवसीला तसव्वुफ़ उनमें कुछ इस्लाम की ख़ूबी हो तो हमें दिखलाएँ।

9 फ़स्ल सालकीन (سالکین) के बयान में

लफ़्ज़ सालकीन के मअनी हैं कि राह रौंदा। लेकिन सूफ़िया की इस्तिलाह में तक़र्रुब-ए-हक़ के उस तालिब को सालिक कहते हैं कि जो अक़्ल व मआश भी रखता हो। लफ़्ज़ सालिक मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) के मुक़ाबले में है। क्योंकि मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) राह रौंदा नहीं है। ना वो मुसलमान है ना हिंदू है ना सूफ़ी ना कुफ़ी वो बे राह खींचा हुआ शख़्स है और उस में अक़्ल-ए-मआश नहीं है। क्योंकि वो पागल है। सालिक बा अक़्ल है और क़वाइद व तसव्वुफ़ पर चलता है। इसलिए मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) व सालिक हर दो लफ़्ज़ मुक़ाबले के हैं।

सूफ़ी लोग **तीन चीज़ों** की तलाश करते हैं। उनमें से पहली चीज़ जज़्बा है और उनमें इस की बड़ी क़दरो मंजिलत है। क्योंकि ये उनके गुमान में ख़ुदा की तरफ़ से एक कशिश है। हम मसीही भी इस कशिश को जो अल्लाह से होती है, बड़ी नेअमत और फ़ज़्ल समझते हैं। चुनान्चे ख़ुदावंद मसीह ने फ़रमाया है कि मेरा बाप आदमीयों को मेरी तरफ़ खींच लाता है। इसी कशिश को हम

जज़्बा समझते हैं। लेकिन उनके ख़्याल और हमारे ख़्याल में फ़र्क़ सिर्फ इतना है कि वो लोग दीवानगी को कशिश समझते हैं और हम समझते हैं कशिश इलाही से दीवानगी दफ़ाअ होती है। रूह में ज़िंदगी और अक़्ल में होशयारी और ख़यालात में रोशनी और दिल में ताज़गी आती है। तब हुक़ूक़-उल्लाह और हुक़ूक़-उल-ईबाद वो शख़्स पहचानता है और बजा लाता है सूफ़ी समझते हैं कि सब हुक़ूक़ उड़ जाते हैं और कैद-ए-इलाही शराअ की रहती।

दूसरी चीज़ जिसकी वो तलाश करते हैं सुलूक है और ये ना कशिश है बल्कि कोशिश है जो हुसूल-ए-मुराद के लिए ख़ुदा की राह में सालिक अपनी तरफ़ से करता है। यानी सूफ़िया के तज्वीज़ किए हुए तरीक़ों को अमल में लाता है ताकि वो ख़ुदा का वली हो जाये। पस हर सालिक उन के गुमान में राह रौंदा है, जो अभी मंज़िल ओ मक़्सूद तक नहीं पहुंचा जैसे मुसाफ़िर जो अभी राह में है।

हम इस बात को पसंद करते हैं और वाजिब जानते हैं कि इन्सान को क़ुर्बत-ए-इलाही के लिए कोशिश और मेहनत करनी चाहिए। लेकिन हम में और सूफ़िया में फ़र्क़ सिर्फ इतना है कि वो लोग इन्सानी ख़्याल से तज्वीज़ शूदा तरीक़ों को अमल में ला कर ख़ुदा से मिलना चाहते हैं और हम मसीही लोग उन तरीक़ों को इस मतलब पर मुफ़ीद समझते हैं जो ख़ुदा ने आप अपने कलाम में अपने पैग़म्बरों के ज़रीये ज़ाहिर किया है और अपनी क़ुदरतों से उन पर गवाही दी है। पस उनका सुलूक वो है। हमारा सुलूक ये है।

तीसरी चीज़ जिसकी वो तलाश में हैं **उरूज** है। यानी वसूल बमंज़िला मक़्सूद इस को वोह लोग ख़ुदा की बख़्शिश भी कहते हैं। कि ख़ुदा ने इस सालिक को कोई रुत्बा या विलायत का कोई दर्जा बख़्शा है। मसलन कोई क़ुतुब हो गया या ग़ौस बन गया या शाह विलायत हो गया वग़ैरा।

हम समझते हैं कि ऐसे ओहदे और दर्जे ख़ुदा ने आदमीयों को कभी नहीं बख़्शे ये सिर्फ़ फ़र्ज़ी बातें हैं। अगर उनमें कुछ उरूज है तो यही है कि अक्सर जाहिल लोग किसी को बड़ा मुर्ताज़ देखकर उस के गर्द हो जाते हैं और बरमला पीर समझते हैं और उस की क़ब्र चूने या संगमरमर की बनाते और बुर्ज खड़ा करते हैं और ढोल बजा कर साल ब साल मेला लगाते हैं और तमाशा दिखलाते हैं। यही उरूज उनके पास है और हमें उनमें कुछ उरूज नज़र नहीं आता बल्कि उरूज (ऊँचा होने) के एवज़ बहुत सा नुज़ूल (गिरावट) है।

हक़ीक़ी उरूज जो हक़ीक़ी वलीयों को अल्लाह से बख़्शा जाता है। ये है इत्मीनान इलाही उनकी रूह में अल्लाह से इलक़ा (दिल में बात डालना) होता है और वो मुहब्बत इलाही से अल्लाह की तरफ़ से भर जाते हैं और माअर्फ़त के इसरार ज़्यादा-तर उन पर मुनकशिफ़ होते हैं और कभी कभी वो लोग कलाम-उल्लाह की ख़िदमत के लिए मोमिनीन के दर्मियाना आला ओहदों पर ख़ुदा की तरफ़ से भेजे जाते हैं और वो ख़ूबी के साथ जाँ-फ़िशानी और जफ़ाकशी करके कलाम-उल्लाह की ख़िदमत करते हैं और कमज़ोरों को ताक़त बख़्शते हैं और बहुत से लोगों को बहिश्त के लिए आरास्ता कर डालते हैं आख़िर में अबद तक वो ख़ुदा के पास ख़ुशी में ज़िंदा रहेंगे। पस उनके और हमारे उरूज में ज़मीन व आस्मान का फ़र्क़ है। यहां कुछ है जो ऊपर से इन के दिलों में आता वहां कुछ है जो इधर उधर के आदमीयों से दिया जाता है एक चीज़ अबदी है दूसरी फ़ानी।

फिर सूफ़िया यूं कहते हैं कि जिसको ख़ुदा तआला अपनी तरफ़ खींचता है वो सब कुछ छोड़ता और इश्क़-ए-इलाही के रुत्बे में पहुंचता है अगर वो उसी जगह में रह जाये और दुनिया में वापिस ना आए यानी उस के होश व हवास फिर दुरुस्त ना हो वैसे ही बेहोश रहे वो (सिर्फ़ मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) है) अगर वो फिर होश में आ जाए और सालिक बन बैठे उस को मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) सालिक कहते हैं और वो जो अव्वलन सालिक था और मुरातिब सुलूक अता कर चुका था फिर वो ख़ुदा से खींचा गया उस का नाम (सालिक मज्ज़ूब) है और अगर सालिक हो और सुलूक तमाम ना किया हो और ख़ुदा ने भी उसे अब तक ना खींचा हो। (वो सिर्फ़ सालिक) है पस ये सिर्फ चार क़िस्म, के लोग हैं। मज्ज़ूब, मज्ज़ूब सालिक, सालिक मज्ज़ूब, सालिक।

अब वो जो सिर्फ सालिक है और वो जो मज्ज़ूब है ये दोनों उनके गुमान में पीर व मुर्शिद होने के लायक़ नहीं है मगर वो जो मज्ज़ूब सालिक है और जो सालिक मज्ज़ूब है वही पीर व मुर्शिद होने के लायक़ समझे गए हैं और उन में भी मज्ज़ूब सालिक का दर्जा बड़ा है।

(फ) ये जो मुहम्मदी लोग पीरों के मुरीद होते फिरते हैं अक्सर सालिकों के मुरीद होते हैं या बाअज़ मजज़बूं के मुअतक़िद होते हैं। उनका काम तसव्वुफ़ के ख़िलाफ़ और बेफ़ाइदा है क्योंकि पीरी के लायक़ वही अश्ख़ास समझे गए हैं जिन्हों ने अव्वलन या आख़िरन कुछ जज़्ब की चाशनी चखी है। इस का मतलब ये है कि बग़ैर दिमाग़ी ख़लल के कोई सूफ़ी पीर मुर्शिद होने के लायक़ नहीं है और क़वाइद व सुलूक जिनका ज़िक्र इसी किताब में मुफ़स्सिल आने वाला है। नाज़रीन देखकर मालूम कर

सकेंगे कि वो सब दिमाग़ी ख़लल पैदा करने के नुस्खे हैं और कुछ हासिल नहीं हो सकता मगर सिर्फ दिमाग़ी ख़लल ताकि वो पीर-ए-कामिल हो जाएं।

हमारा पीरो मुर्शिद सिर्फ एक है जो आस्मान से उतरा और अजल से ख़ुदा के साथ था जिस ने सारे जहान को पैदा किया जो कि कामिल ख़ुदा और कामिल इन्सान है और वो जहान का नूर है हर एक को जो उस के पास आता है वह रोशन करता है। यानी यसूअ मसीह इब्ने अल्लाह और हम सब मोमिनीन अव्वलीन और आख़रीन आपस में पीर भाई हैं और जिस क़द्र सच्चे पैग़म्बर दुनिया में आए वो सब हमारे भाई थे और वो और हम ख़ुदावंद मसीह के बंदे और ख़िदमतगुजार हैं हमें कुछ हाजत नहीं कि पीर तलाश करें और किसी खुफ़ीया नेअमत के हम भूके नहीं जो सीना ब सीना पीरों से हम तक पहुंचे ख़ुदा हमारा बाप है और हम मसीह में हो कर उस के फ़र्ज़ंद हैं इस की रूह हम में मूसिर है हम नूर में और रोशनी में रहते हैं और बराए रास्त मसीह से नेअमतें पाते और ख़ुश हैं।

10 फ़स्ल उन वलीयों के ओहदों के नाम बहस्ब इख़्तियारात

सूफ़ी समझते हैं कि उनके औलिया अल्लाह बहस्ब अपने ओहदों और दर्जों के दस क़िस्म के लोग हैं। (1) क़ुतुब-उल-आलम (2) दीगर अक़्ताब यानी क़ुतुब अक़लीम क़ुतुब मुल्क जिसको शाह विलायत भी कहते हैं और क़ुतुब शहर वग़ैरा (3) अमामान (4) औताद (5) अबदाल (6) अख़्यार व अबरार (7) नक़बा, व नजबा (8) उम्दाअ (9) मुक्तूमान (10) मुफ़रदान, मुजरदान। अब इन ओहदों और दर्जों की शराअ और तफ़्सील जहां तक क़ुतुब तसव्वुफ़ से मुझे मालूम हुई बयान करता हूँ।

(1) क़ुतुब-उल-आलम (قطب العالم)

लफ़्ज़ क़ुतुब के मअनी हैं कि चक्की की कीली यानी वो लोहे की मेख़ जिसके गर्द और जिसके सहारे से ऊपर का पाट घूमता है। सूफ़ी कहते हैं कि दुनिया के

दर्मियान एक आदमी हर ज़माने में ऐसा होता है कि उस पर ख़ुदा की एक ख़ास निगाह होती है। गोया वो ख़ुदा की निगाह का महल होता है और सारे जहान का इंतिज़ाम उसी आदमी से होता है वो सब मौजूदात पर और आलम सिफ्ली व उल्वी के तमाम मख़्लूक़ात पर हाकिम-ए-आला होता है और सब औलिया-अल्लाह उस के नीचे होते हैं उसी का नाम क़ुतुब-उल-आलम है और इसी को क़ुतुब अल-कताब व क़ुतुब व केर व क़ुतुब इर्शाद क़ुतुब मदार भी कहते हैं। किताब मजमा-उल-सलूक (مجمع السلوک) में लिखा है कि इसी का नाम ग़ौस है लेकिन दूसरी बाअज़ किताबों में लिखा है कि ग़ौस और शख़्स है जो क़ुतुब-उल-आलम के नीचे होता है। मिरात-उल-इसरार वग़ैरा में लिखा है कि क़ुतुब-उल-आलम के दाएं बाएं दो वली-अल्लाह मिस्ल वज़ीरों के रहते हैं, इन दोनों का नाम ग़ौस है यानी फ़रियाद-रस वो ग़ौस जो क़ुतुब-उल-आलम के दहनी तरफ़ रहता है इस का ख़िताब अबदाल मलक है और काम उस का ये है कि क़ुतुब-उल-आलम के दिल-ए-पर से फ़ैज़ उठा कर आलम-ए-बाला की मौजूदात को पहुँचाता है और वो ग़ौस जो बाएं तरफ़ रहता है इस का ख़िताब अबदालरब है काम उस का ये है कि क़ुतुब-उल-आलम के दिल पर से फ़ैज़ उठा कर आलम-ए-सिफ्ली यानी इस जहान की मौजूदात को पहुँचाता है और जब क़ुतुब-उल-आलम मर जाता है या अपने ओहदे से तरक़्क़ी करके क़ुतुब-ए-वहदत हो जाता है यानी ख़ुदा में उस को दूरी नहीं रहती है तब उस का ओहदा ख़ाली होता है और अबदाल मलक उस की जगह में आ जाता है और अबदालरब अबदालमलक की जगह में आ जाता है और अबदालरब की जगह कोई और वली तरक़्क़ी पा कर भर्ती हो जाता है।

और ये भी कहते हैं कि क़ुतुब-उल-आलम का दिल हमेशा ऐसा होता है कि जैसा मुहम्मद साहब का दिल था। यानी तमाम ख़सलतें उस की मुहम्मदी ख़सलतें होती हैं। किताब लताइफ़ अशर्फ़ी[4] में लिखा है कि अगर ग़ौस और क़ुतुब ना हों तो तमाम जहान ज़ेर ज़बर हो जाये पस मालूम हो गया कि ये लोग जहान के सँभालने वाले हैं।

मैं कहता हूँ कि ये सूफ़िया का दावा है कि ऐसे लोग दुनिया में होते हैं लेकिन हर दावे के लिए कुछ दलील होनी चाहिए वर्ना दावा बातिल होगा। पस इस दावे के लिए कुतुब तसव्वुफ़ में कोई दलील नज़र नहीं आई जिसका मैं यहां बयान करूँ। चाहीए कि नाज़रीन किताब हज़ा सूफ़ियों से इस दावे का सबूत तलब करें और उन से

---

4 http://ia902701.us.archive.org/13/items/Lataef-e-ashrafi-Farsi/00440_Lataef-e-Ashrafi-1-fa.pdf

कहें कि तुम जो क़ुरआन पर ईमान रखते हो क्या तुम्हारे ख़ुदा ने तुम्हारे क़ुरआन में ऐसे ओहदों की तुम्हें कुछ ख़बर दी है? या तुम्हारे पास कोई अक़्ली दलील इन ओहदों के सबूत में है, या तुम दुनिया की तारीख़ से ये साबित कर सकते हो, इन ओहदों के अश्ख़ास इस दुनिया में होते आए हैं? या तुम बतला सकते हो कि दुनिया में इस वक़्त ऐसे ऐसे फ़ुलां अश्ख़ास मौजूद हैं? बरख़िलाफ़ इस के सूफ़ी यूं कहते हैं कि ऐसे अश्ख़ास होते तो हैं मगर किसी को मालूम नहीं हो सकते कि वो कौन हैं और कहाँ हैं। अब फ़रमाएं कि इस बात को सिवाए नासमझ आदमी के कौन क़ुबूल करेगा?

जहान को सँभालना उसी का काम है जिसने जहान को पैदा किया है। इन्सान में तो इतनी ताक़त भी नहीं कि वो अपनी जान को सँभाले। अगर ख़ुदा आदमी को ना सँभाले तो आदमी क़ायम नहीं रह सकता। अगर आदमी फ़र्ज़न ख़ुदा के बराबर हो जाये इल्म और ताक़त में और हिक्मत व दूर बीनी में तब वो शायद ख़ुदा का शरीक जहान को सँभाल सकता है लेकिन ये बात अक़्लन व नक़्लन मुहाल है कि कोई मख़्लूक़ ख़ुदा के बराबर हो जाये और जब बराबर नहीं हो सकता तो वो काम भी नहीं कर सकता जो ख़ुदा के करने है।

ग़ौस और क़ुतुब आलम का ओहदा इतना बड़ा बयान हुआ है कि क़ुरआन और हदीस से मुहम्मद साहब का भी इतना बड़ा ओहदा साबित नहीं हुआ। पस ये कैसा मुबालग़ा इन सूफ़ियों का है? और ऐसा ख़्याल उनके दिलों में कहाँ से आ गया? शायद क़ौम सुफा में यग़ूस बुत की शान का ख़्याल चला आया हो और हालत-ए-इस्लाम में इस मकरूह ख़्याल ने नई शक्ल पकड़ कर ये ग़ौस क़ुतुब का ख़्याल पैदा कर दिया हो। (वल्लाहो आलम)

हम मसीही लोग दावा करते हैं कि कुल जहान का इख़्तियार ख़ुदावंद मसीह के हाथ में है और अबद तक इसी के हाथ में रहेगा। ये हमारा दावा कलाम-उल्लाह से साबित है और मसीह की शान के मुनासिब है क्योंकि वो अल्लाह इन्सान है और सब जहान उस से पैदा हुआ है पस वो जो सारे जहान का ख़ालिक़ है वही जहान को सँभालता भी है।

(2) दीगर अक़्ताब (اقطاب) यानी दवाज़दा अक़्ताब (دوازدہ اقطاب)

क़ुतुब-उल-आलम तवक्कुल जहान में एक शख़्स फ़र्ज़ किया गया फिर उस के नीचे बारह क़ुतुब और माने जाते हैं। जो उस के हुक्म में रहते हैं। क्या ताज्जुब है कि ये ख़्याल क़दीम सूफ़िया ने ख़ुदावंद यसूअ मसीह और इस के बारह शागिर्दों पर ग़ौर करके अपने वलीयों की तरफ़ उलट लिया हो? वो कहते हैं कि कुल ज़मीन हफ़्त अक़लीम में मुनक़सिम है और हर अक़लीम में एक क़ुतुब रहता है जिसको क़ुतुब अक़लीम कहते हैं। फिर हर विलायत में एक क़ुतुब फ़र्ज़ करते हैं। जिसको शाह-ए-विलायत कहते हैं और पाँच विलायतें बतलाते हैं। ये पुराने ज़माने की तक़्सीम है। पस सात और पाँच बारह क़ुतुब हुए।

फ़ुतूहात-ए-मक्की[5] (فتوحاتِ مکی) में लिखा है कि क़ुत्बों की कुछ निहायत नहीं है क़ुतुब ज़हाद, क़ुतुब इबाद, क़ुतुब उर्फ़ा, क़ुतुब मितोक्लान वग़ैरा। हर सिफ़त पर एक क़ुतुब होता है और हर गांव में एक क़ुतुब रहता है और गांव की हिफ़ाज़त करता है और वलीयों की भी इंतिहा नहीं है। जब कोई वली तरक़्क़ी करता है तो वो क़ुतुब विलायत बन जाता है। फिर तरक़्क़ी करके क़ुतुब अक़लीम होता है। इसी को क़ुतुब अबदाल कहते हैं और वो तरक़्क़ी करके अबदालरब या बायाँ ग़ौस हो जाता है। फिर दहना ग़ौस या अबदालमलक बनता है। फिर क़ुतुब-आलम होता है और वहां से तरक़्क़ी कर के क़ुतुब-वहदत होता है उन्हीं को मफ़रूदुन और मुजर्रिदुन कहते हैं लेकिन ये सिर्फ़ सूफ़िया की तज्वीज़ है इस का सबूत तो कुछ नहीं है बल्कि दावे बे दलील है। और इस रोशनी के ज़माने में इस का बुतलान ज़ाहिर हो गया और मालूम हो गया है। कि ये उनकी वहमी और फ़र्ज़ी बात थी। ख़ुदा ने ऐसे ग़ौस और क़ुतुब वग़ैरा कुछ नहीं बनाए। अलबत्ता बाअज़ लोग ख़ुद नेक और ख़ुदा-परस्त गुज़रे हैं। उनकी मौत के बाद मुरीदों ने उनकी क़ब्रों पर दुकानदारी जारी करने के लिए उनके नाम ग़ौस और क़ुतुब और शाह विलायत और मख़दूम साहब रख लिए हैं और मज़्कूर ओहदे फ़र्ज़ किए हैं। फिर आप ही कहते हैं कि इन ओहदे-दारों की मौत के बाद दूसरे लोग इन ओहदों पर मुक़र्रर होते हैं। पस चाहीए कि इन मर्द-गान को इन ओहदों से बर्ख़ास्त शूदा समझ कर उनकी क़ब्रें ना पूजें। बल्कि उन ज़िंदों को तलाश करें जो बजाय उनके ओहदायाब हुए हैं।

---

5 https://archive.org/details/FTMAKIA

(3) औताद (اوتاد)

लफ़्ज़ औताद (اوتاد) वतद (وَتَد) या वितद (وِتَد) की जमा है। लकड़ी के खूंटे को अरबी में वतद कहते हैं मुहम्मद साहब ने पहाड़ों को क़ुरआन में औताद कहा है। गोया वो ख़ुदा की तरफ़ से ज़मीन पर गाड़े हुए खूंटे हैं। ताकि ज़मीन जुंबिश ना करे सूफ़ी कहते हैं कि हमारे वलीयों में से चार वली ऐसे हैं कि वही औताद हैं। मिरात-उल-इसरार[6] (مراۃالاسرار) में लिखा है कि मशरिक़ में अबदुर्र-रहमान खूँटा है, मग़रिब में अब्दुल वदूद खूँटा है, जुनूब में अबदुल रहीम खूँटा है, शुमाल में अब्दुल क़ुद्दूस खूँटा है। इन चार अश्ख़ास से जहान का इस्तिहकाम है। हम समझते हैं कि जहान का इस्तिहकाम सिर्फ़ ख़ुदा की क़ुदरत से है ना कि इन चार औताद से जिनका सबूत ना अक़्ल से है ना कलाम-उल्लाह से।

(4) अबदाल (ابدال)

लफ़्ज़ बदल (بدل) बामाअनी मुआवज़ा या बुदील (بُدیل) बमाअनी शरीफ़ के जमा अबदाल (ابدال) है। लेकिन इस का इस्तिमाल वाहिद और जमा पर बराबर है बाअज़ सूफ़ी कहते हैं कि अबदाल वो लोग हैं जिन्हों ने तब्दीली हासिल की है बुरी सिफ़तों में से निकले हैं अच्छी सिफ़तें पैदा की हैं यही मज़्मून सच्च है और ये इंजील शरीफ़ की बात है ना कि क़ुरआन की क्योंकि इंजील की बड़ी और मुक़द्दम ताअलीम यही है कि मसीही ईमानदार मसीह की क़ुदरत से तब्दीले दिल और तब्दीले मिज़ाज करता है और जितने सच्चे मसीही हैं वो सब अबदाल हैं और अहले दुनिया भी अगर ग़ौर से देखें तो उन्हें' हक़ीक़ी मसीही बदले हुए नज़र आ सकते हैं।

मैं समझता हूँ कि ये ख़्याल इन सूफ़िया में मुल्क-ए-शाम से आया है। इसलिए उनकी किताबों में इराक़ और शाम की तरफ़ बहुत अबदाल बयान हुए हैं क्योंकि वहां रुहबान बकस्रत रहते हैं।

अनवार-उल-आरिफिन (انوارالعارفین) सफ़ा 105 मैं लिखा है कि :-

نشان ابدال آنست کہ زائدہ نمیشو مردایشان رااولاد و ایشان لعنت نمیکنندچیزیرہ

6 https://archive.org/details/Mir-atUl-israr-UrduTranslation

किसी चीज़ पर लानत ना करना ये ख़ास्सा सिर्फ़ मसीही आदमी का है, और औलाद पैदा ना होना ये ख़ास्सा रहबान का है। क्योंकि रहबान निकाह नहीं करते और अगर शादी वाले पहले से हों तो वो दोनों मर्द औरत इस दुनियावी ख़्याल से अलग हो कर इबादत में मसरूफ़ रहते हैं इसलिए उनकी औलाद पैदा नहीं होती। पस सूफ़ी कहते हैं कि ख़ुदा ने अबदाल को वो ताक़त दी है कि जहां चाहें उड़ कर चले जाएं और अपनी मिसाली सूरत इस जहां पर छोड़ जाये बल्कि बाज़-औक़ात गेडरिया शेर या बिल्ली वग़ैरा की सूरत भी बन जाते हैं। ये सब बातें ग़लत हैं। अबदाल वही मसीही हैं जो बदल गए हैं जिन्हों ने नया जन्म पाया है। अगर कोई सूफ़ी अबदाल बनना चाहे तो हक़ीक़ी मसीही हो जाये।

सूफ़ियों का तसव्वुफ़ और मुहम्मदियों का इस्लाम और कुल मजाहिब दुनिया के ख़यालात इबादात वग़ैरा से कोई आदमी दिल की तब्दीली हासिल नहीं कर सकता और जब तक उस का दिल तब्दील ना हो जाये ख़ुदा का मुक़र्रब भी नहीं सकता। सिर्फ मसीही दीन है जिस से तब्दीली होती है और आदमी अबदाल बन जाता है।

(5) अख़्यार व अबरार (اخیاروابرا ر)

ये लफ़्ज़ ख़ैर और बर (خیر اور بر) की जमा है। बमाअनी नेकोकारान फ़िल-हक़ीक़त ये अल्फ़ाज़ सच्चे ईमानदारों और नेकोकारों के हक़ में थे। लेकिन सूफ़ियों ने ज़बरदस्ती या नादानी से अपने ख़ास क़िस्म के वलीयों के हक़ में तज्वीज़ कर लिए हैं और कहते हैं कि तीन सौ आदमी ऐसे होते हैं और कुछ बयान उनका नहीं कर सकते।

(6) अमामान (امامان)

यानी दीन के पेशवा ऐसे लोग अलबत्ता मुहम्मदियों में हुए हैं। जिन्होंने उनके दीन का बंदो बस्त ज़ाहिरी तौर पर किया है। लेकिन उन ओहदों को विलायत से, कि अम्र बातिनी है कुछ इलाक़ा नहीं है। इनके इमाम तीन क़िस्म के हैं। अव्वल बारह इमाम हैं, जो हज़रत अली की औलाद में से हुए हैं। जिनको शिआ लोग मासूम बताते हैं और अपने दीन का पेशवा समझते हैं। दुवम चार इमाम सुन्नीयों की फ़िक़्ह के गुज़रे हैं, जिन्हों ने मसाइल-ए-फ़िक़्ह अपने इजतिहाद से निकाले हैं। सोइम वो इमाम

हैं, जो कि जिहाद के वक़्त मुहम्मदी फ़ौज के सरदार या सिपहसालार होते थे। बाअज़ उनमें से जिहादों में मर गए हैं और उनके मक़बरे पूजे जाते हैं। चुनान्चे दो इमाम हमारे पानीपत में भी पूजे जाते हैं। पस इन सूफ़िया ने अपने वलीयों की फ़हरिस्त में इन इमामों को भी शामिल किया है ताकि इमाम पर ज़ाहिर करें। वो भी उनकी तरफ़ थे।

किताब इस्तिलाहात सूफ़िया मुसन्निफ़ अबदूर्रज़्ज़ाक़ काशी[7] में लिखा है कि अमामान वो दो शख़्स हैं जो क़ुतुब आलम के दाहने और बाएं रहते हैं। यही क़दीम इस्तिलाह सूफ़िया की मालूम होती है। इस सूरत में वो तीन क़िस्म के इमाम वलीयों की फ़हरिस्त में नहीं आ सकते और ये अमामान ग़ैर मालूम शख़्स होते हैं। पस ये सिर्फ़ नाम ही नाम है और कुछ नहीं है।

(7) नुक़बा व बख़ुबा (نُقَبَاو بخُبَا)

नुक़बा (نُقَبَا) नक़ीब (نقیب) की जमाअ है बमाअनी मिहतर व अरीफ़ व दानंदा अंसाब मर्दुम शरह फ़िसुस[8] में लिखा है कि नुक़बा तीन सौ अश्ख़ास हैं उन्हीं को अबरार भी कहते हैं और ये लोग मग़रिब में रहते हैं और सब वलीयों में इनका दर्जा छोटा है।

बख़बा (بخبا) बख़ैब (بخیب) की जमा है बानी बर्गुज़ीदा, शरह फ़िसुस में है कि बख़बा सात आदमी हैं। उन्हीं को रिजाल-उल-ग़ैब कहते हैं। मजमा-उल-सलातक में लिखा है कि वो चालीस आदमी हैं और ख़ल्क़-उल्लाह के हुक़ूक़ में मतमरफ़ हैं। आदमीयों के हालात दुरुस्त करने और उनके बोझ उठाने को खड़े हैं।

(फ) यही चालीस आदमी हैं जो चहलतन कहलाते हैं और बाअज़ आदमीयों के सर पर भी आते हैं। इनकी पूजा नादान मुसलमानों में बहुत होती है। एक मुहम्मदी मुंशी साहब को मैंने 30 बरस देखा कि अपनी मुसीबतों में बराबर चहलतन को पुकारते रहे और उनकी नज़र नयाज़ करते रहे ताकि उनकी दुनियावी तंगीयाँ दफ़ाअ हों। लेकिन कुछ तंगीयाँ तमाम उम्र दफ़ाअ ना हुईं। बल्कि तंगी पर तंगी आती रही और वो इसी ख़्याल में मर गए और बाअज़ अहमक़ औरतों को अपना बुरा ख़्याल

---

7 http://www.tasavof.ir/books/download/arabic/kashani/mojam-estelahat.pdf

8 http://www.tasavof.ir/books/download/arabic/kashani/Qashany_fusus[1].pdf

सिखला गए। वो अब तक इन चहल तन को पुकारती हैं। जिसका वजूद कहीं नहीं है। वो अल्लाह को नहीं पुकारती हैं जो कि सब कुछ कर सकता है और ज़िंदा मौजूद है।

(8) उम्दा (عُمَدا)

अमूद (عمود) की जमा है बमाअनी सतून ख़ाना। सूफ़ी कहते हैं कि ऐसे चार शख़्स हैं जो ज़मीन के चार कोनों में रहते हैं वो जहान के सतून हैं उन से जहान ऐसा क़ायम है जैसे छत सतून से क़ायम होती है। लेकिन कुछ सबूत नहीं दे सकते कि वो कौन हैं और कहाँ हैं?

(9) मक्तुमान (مکتومان)

कमतुम (مکتوم) बमाअनी पोशीदा ये पोशीदा वली हैं। गोया छुपे रुस्तम हैं। तौज़ीह-उल-मज़ाहिब (توضیح المذاہب) में लिखा है कि ये चार हज़ार आदमी हैं। जो पोशीदा रहते हैं और अहले तसर्रुफ़ में से नहीं हैं। कोई इन सूफ़िया से पूछे कि तुम्हारे तो सारे वली पोशीदा हैं। तुम ख़ुद उन्हें नहीं जानते कि वो कौन हैं और कहाँ हैं फिर इन ख़ास को मक्तुमान कहने की वजह क्या है? कुछ नहीं जो दिल में आया कह दिया।

(10) मफ़रूदुन व मजरदुन (مفردون ومجردون)

मुफ़रद व मुजरद वो है जो अकेला रह गया हो। सूफ़ी कहते हैं कि मुफ़रद व मुजरद वो है जो फर्दियत की तजल्ली को पहुंचा है। यानी उस मुक़ाम को पहुंचा है। जहां सिर्फ़ अल्लाह ही अल्लाह है और सब चीज़ें और सब ख़यालात नेस्त व नाबूद हैं। जो लोग इस मुक़ाम को पहुंचते हैं वो ख़ुद को भूल जाते हैं। अपने में और ख़ुदा में कुछ फ़र्क़ नहीं रहता। ये मुक़ाम महवियत है या हमा औसत (ہمہ اوست) का कामिल इन्किशाफ़ यहां होता है। किसी सूफ़ी ने इस मुक़ाम की शरह इस शेअर में की है :-

کم ازان کم کن تجریداین بود توز توکم شوکہ تفریداین بود

तोज़ तुकम शोकह तफ़रीदेन बूद कम अज़ां कम कुन तजरीदेन बूद

कशफ़-उल-लुग़ात (کشف اللغات) में लिखा है कि जो लोग इस मुक़ाम को पहुंचते हैं वो क़ुतुब के निज़ाम से फ़ारिग़ हो जाते हैं। मिरात-उल-इसरार (مراۃ الاسرار) में लिखा

है कि ऐसे लोगों की कुछ तादाद नहीं है। और अक्सर सूफ़ी मुसन्निफ़ कहते हैं कि मुहम्मद साहब भी दावे नबुव्वत से पहले मुफ़रदों में से थे। पहले मेरा ख़्याल था कि सूफ़ी लोग हज़रत मुहम्मद साहब की निस्बत हमा औसत (ہمہ اوست) का ख़्याल जमाते हैं। मगर अब ज़्यादा-तर कुतुब-ए-तसव्वुफ़ के देखने से मालूम हुआ है कि शायद इस बारे में सूफ़ी लोग सच्चे हों। क्योंकि हमा औसत (ہمہ اوست) का ज़ायक़ा अलबत्ता मुहम्मद साहब के ख़्याल में कुछ मालूम होता है। ग़ालिबन वो ज़रूर मुफ़रदों में से होंगे। क्योंकि जिस शख़्स के ख़यालात में आस्मानी रोशनी कुछ भी नहीं चमकी है वो इसी हमा औसत (ہمہ اوست) के ख़्याल में अपने लिए कुछ तसल्ली तलाश करता है। लफ़्ज़ ज़ाहिर क़ुरआन में ग़ालिबन इसी मतलब पर होगा।

11 फ़स्ल सूफ़ी वलीयों की मुशाबहत बाअम्बिया के बयान में

कुतुब सूफ़िया में देखने से मालूम हो सकता है कि ये लोग अपने वलीयों को ख़ुदा के सच्चे नबियों के मुशाहबेह (यानी उनके जैसे) बयान करते हैं। किसी को कहते हैं कि वहू अली क़ल्ब मूसा (وہو علی قلب موسیٰ) और किसी को कहते हैं कि वहू अली क़ल्ब ईसा (وہو علی قلب عیسیٰ) और किसी को अली क़ल्ब दाऊद (علی قلب داؤد) बतलाते हैं वग़ैरा वग़ैरा। जब मैंने इस मज़्मून पर उनका ज़ोर देखा और उनकी इस्तिलाहात से मालूम किया कि अली क़ल्ब मअनी मशाहबत के हैं। यानी ख़ू ख़सलत और अंदरूनी कैफ़ीयत और निस्बत व इलाक़ा बख़ुदा उस वली का ऐसा है कि जैसा फ़ुलां पैग़म्बर का था और क़ुतुब आलम की निस्बत कहते हैं कि वहू अले क़ल्ब मुहम्मदिया तो मैं मानता हूँ अली क़ल्ब मुहम्मद मुसलमान हो सकते हैं। क्योंकि उनके मुक़तदी हैं और ख़सलत की पैरवी में साई रहते हैं। लेकिन सच्चे पैग़म्बरों के मुशाहबेह ये लोग क्योंकर हो सकते हैं? ये इफ़्तिराई मज़्मून है और तारीकी के ज़माने में सादा लोगों को फ़रेब देने के लिए ख़ूब था। मगर अब रोशनी का ज़माना आ गया है अब हम इस बात को क्योंकर क़ुबूल कर सकते हैं। गुज़श्ता पैग़म्बरों की किताबें मौजूद हैं और यहूद व नसारा इनकी उम्मतें भी हाज़िर हैं। और उन पैग़म्बरों का मिज़ाज और ख़सलत और ईमान वग़ैरा की कैफ़ीयत इन किताबों में मर्क़ूम है और सूफ़ी वलीयों की ख़ू ख़सलत उनके तज़किरों में मर्क़ूम है। पस मुक़ाबला करके देखो कि किस क़द्र फ़र्क़ है। ऐसा फ़र्क़ है जैसा जाहिल और आलिम में या मोमिन या ग़ैर-मोमिन में होता है। पस ये

कहना तो बजा है कि ये औलिया लोग पैग़म्बरों के मुख़ालिफ़ हैं। और ये कहना बेजा है कि वो उनके मुशाहबेह हैं। चह निस्बत ख़ाक राबाआलम पाक। (چہ نسبت خاک راباعالم پاک)

ये भी ग़नीमत है कि उन पैग़म्बरों को बड़ा बुज़ुर्ग तो समझते हैं। कि अपने वलीयों को उनके मुशाहबेह (उनके जैसा) बता कर फ़रोग़ देना चाहते हैं। क्या ये बात सच्च नहीं है, कि अगर कोई चाहे कि मैं अपने मिज़ाज में मुहम्मद साहब का हम-शक्ल हो जाऊं तो वो अपने ज़ाहिर और बातिन को क़ुरआन और हदीस के मुताबिक़ बना दे।

और अगर कोई चाहे कि मैं पैग़म्बरों का हम-शक्ल हो जाऊं तो चाहिए कि वो **बाइबल की ताअलीम** के मुताबिक़ ख़ुद को सँवारे। सूफ़ी साहब ना तो महज़ क़ुरआन के ताबे हैं ना बाइबल के। वो तो वेदों और बुतपरस्त यूनानियों के ख़यालात के ताबे हैं। फिर वो क्योंकर नबियों के हमशक्ल हो सकते हैं? ये तो वही बात है कि रहें झोपंड़ों में और ख़्वाब देखें महलों के। या वो बात है कि गर्ग गो सफ़ेदोन के लिबास में ज़ाहिर होते हैं। चाहे कि नाज़रीन किताब हज़ा सूफ़ियों से यूं कहें कि ऐ साहिबो ! अम्बिया की ख़सलत तो अलग रही अव्वल यह तो साबित कर दो कि इन वलीयों में वही ईमान था जो नबियों में था? नबियों का ईमान कुछ और है और इनका ईमान कुछ और है। कौन सा नबी हमा औसत (ہمہ اوست) का क़ाइल था? बतलाओ। इस तरह इनकी उनकी ताअलीम और चाल चलन में फ़र्क़ है। पस तुमने मुख़ालिफ़त का नाम मुशाबहत क्यों रखा है? क्या ख़ुदा से नहीं डरते?

(12) फ़स्ल तक़्सीम आलम या मुक़ामात आलम के बयान में

सूफ़ी लोग जहान को चार हिस्सों या मुक़ामों में तक़्सीम करते हैं और इन मुक़ामों के नाम यूं रखे हैं। अव्वल नासूत (ناسوت), दुवम जबरूत (جبروت), सोइम मलकूत (ملکوت), चहारुम लाहूत (لاہوت)।

नासूत (ناسوت) आलम-ए-अज्साम यानी इस दुनिया को कहते हैं। **जबरूत (جبروت)** सिफ़ात इलाहियह की अज़मत व जलाल के मुक़ाम को कहते हैं। **मलकूत (ملکوت)** आलम फ़रिश्तगान या आलम-ए-अर्वाह व आलम ग़ैब व आलम अस्मा का

नाम बतलाते हैं। **लाहूत (لاہوت)** ज़ात-ए-ईलाही का आलम है। जहां जा कर सालिक फ़नाफ़िल्लाह हो जाता है। यानी मुफ़रद व मुजरद होता है।

मिरात-उल-इसरार (مراۃالاسرار) में लिखा है कि मफ़रूदुन हमेशा मुक़ाम लाहूत (لاہوت) में रहते हैं। और लफ़्ज़ मुक़ाम इस जगह मिजाज़न इस्तिमाल होता है। वर्ना लाहूत (لاہوت) कोई मुक़ाम नहीं वहां जिहात सत्ता नहीं हैं। वो तो सिर्फ ज़ात-ए-इलाही का नाम है। इस के नीचे जबरूत (جبروت) का मुक़ाम है। यानी जब्रो कसर का मुक़ाम और इस जगह से शश-जिहत का इंतिज़ाम शुरू होता है मोअजज़ात व तसर्रुफ़ात और तेरा मीर बोलना और ये और वो का लफ़्ज़ यहां इस्तिमाल होता है, और ये ख़ुदा के तख़्त का मुक़ाम है। और इस जगह से लेकर ज़मीन की ख़ाक तक क़ुतुब आलम का तसर्रुफ़ मानते हैं। और कहते हैं कि लाहूत में जबरूत का ख़्याल कुफ़्र है। वो लोग जो लाहूत में पहुंचते हैं मुक़ाम जबरूत में वापिस आकर मोअजज़ात वग़ैरा किया करते हैं। और इस वक़्त वो लोग लाहूत से गिरे होते हैं।

अबदूर्रज़्ज़ाक़ काशी से मन्क़ूल है कि लाहूत सूफ़िया के नज़्दीक वो हयात है जो तमाम अश्या में सरायत किए हुए है। और मुक़ाम नासूत और रूह-ए-इन्सानी इस लाहूत का महल है। इसी मज़्मून पर किसी सूफ़ी का ये शेअर है :-

روح شمع وشعاع اوست حیات خانہ روشن ازو داو از ذات

रूह शमाअ व शआअ औसत हयात ख़ाना रोशन अज़ूदा व अज़-ज़ात

मैं कहता हूँ कि अगरचे आम सूफ़ी लफ़्ज़ जबरूत से आलम जबरात मुराद लेते हैं तो दरहक़ीक़त लफ़्ज़ जबरूत (جبروت) जबर से मुबालग़ा है। जिसके मअनी हैं बड़ी ज़बरदस्ती और बड़ी बुलंदी पस ख़ुदा की वो शान जिससे वो सब चीज़ों हुकूमत और बुलंदी रखता है उसी शान का नाम जबरूत है। और वो ज़ात-ए-पाक जिसकी वो शान है उसी का नाम लाहूत है। पस लफ़्ज़ जबरूत से सिफ़ात क़दीमा पर और लफ़्ज़ लाहूत से ज़ात-ए-पाक पर और लफ़्ज़ मलकूत से आलम-ए-बाला पर और लफ़्ज़ नासूत से आलम-ए-अजसाम पर इशारा होता है। और इस निशान पर बज़ाहिर कुछ नुक़्सान नहीं है। अलबत्ता वो कैफ़ियतें जो इन मुक़ामों में सूफ़िया ने अपनी अक़्ल से अपने वलीयों के लिए फ़र्ज़ की हैं कि यहां ये होता है। और वहां वो होता है। इस का सबूत बदलील उनके ज़िम्मे है। मैं उनके इस बयान को महज़ वहम समझता हूँ।

(13) फ़स्ल माअर्फ़त के बयान में

लफ़्ज़ माअर्फ़त बमाअनी शनाख़्तें अगरचे चंद मअनी में अहले इल्म ने इस्तिमाल किया है। लेकिन सूफ़िया की इस्तिलाह में ख़ुदा की ज़ात व सिफ़ात की पहचान का नाम माअर्फ़त है। और ये सहीह व दुरुस्त बात है कि ख़ुदा की ज़ात व सिफ़ात की शनाख़्त माअर्फ़त है। लेकिन बहस इस में है कि आया सहीह माअर्फ़त इलाही कहाँ से है, और क्योंकर हासिल होती है? और कि सूफ़िया ने क्या माअर्फ़त हासिल की है? वो ख़ुदा की निस्बत क्या कुछ समझते हैं? और दानिशमंद तालिबे हक़ का फ़र्ज़ है कि इन बातों पर फ़िक्र करे।

हम जो मसीही हैं हम भी माअर्फ़त की इज़्ज़त करते हैं। और माअर्फ़त में तरक़्क़ी के दर पर हैं। क्योंकि हम जानते हैं कि तमाम जहान के उलूम का हासिल यही होना चाहिए कि आदमी अपने ख़ालिक़ को पहचाने। और हम साफ़ कहते हैं कि जिसने सब कुछ सीखा और ख़ुदा को नहीं पहचाना वो अब तक जाहिल है।

फ़िल-जुम्ला ख़ुदा शनासी तो आम लोगों को हासिल है कि वो ख़ुदा के वजूद के क़ाइल हैं। लेकिन इतनी ख़ुदा शनासी काफ़ी नहीं है। ज़रूर है कि सब आदमी आगे बढ़ें और इस क़द्र बढ़ें कि ना सिर्फ ख़ुदा की ज़ात व सिफ़ात पर ही बस करें बल्कि उस की मर्ज़ी और इरादे को दर्याफ़्त करके और उस के मुनासिब काम करके उस की रजामंदी अपनी निस्बत हासिल करें। पस वो माअर्फ़त जो कि सूफ़िया ने हासिल की है वह कहाँ से है? कुछ क़ुरआन से है, तो भी बतरीक़ तहरीफ़ माअनवी के कुछ हदीसों से है। तो भी अक्सर ज़ईफ़ और वज़ई (मनघड़त) हदीसों से कुछ अपने बुज़ुर्ग सूफ़िया अक़्वाल में से है। कुछ अहले फ़ल्सफ़ा के ख़यालात में से है। कुछ बाअज़ शोअरा के अशआर में से है। इनकी माअर्फ़त के माख़ज़ हैं। नाज़रीन इन्साफ़ से कहें कि क्या ये चीज़ें इस लायक़ हैं कि दानिशमंद आदमी अपनी रूह को इन बातों के हवाले कर दे? हर मोअतबर जगह से जो बातें सामने आती हैं। वो इस रोशनी के ज़माने में मक़्बूल नहीं हो सकती हैं।

फिर सूफ़ियों ने और उनके वलीयों ने क्या माअर्फ़त हासिल की है और इन के ख़यालात में क्या कुछ भर गया था? जो कुछ इनके ख़यालों में भर गया था तसव्वुफ़ की किताबों में ये सब बातें लिखी हैं। और हमने इनकी किताबों को पढ़ कर मालूम कर लिया है कि उन के ख़यालों में क्या था? और जो कुछ उनके ख़यालों में था वही कुछ उनकी माअर्फ़त थी। सबसे उम्दा और मोतबर और मसाइल माअर्फ़त की जामेअ

किताब उनमें मौलवी रुम की मसुनवी है। जिसकी इबारत फ़सीह और मज़ामीन अक्सर जय्यद हैं और इस की निस्बत ये शेअर दुरुस्त है :-

مثنوی مولوی معنوی ہست قرآن درزبان پہلوی

मसुनवी मौलवी माअनवी हस्त क़ुरआन दर ज़बान पहलवी

लेकिन उस में और तमाम कुतुब तसव्वुफ़ में क़रीब दो सलस के ऐसे मज़ामीन दर्ज हैं जिनको ज़माना-ए-हाल की रोशनी ग़लत बतलाती है। अलबत्ता बाअज़ बातें सहीह और दुरुस्त भी हैं। लेकिन बाअज़ बड़े बड़े उसूल महज़ ग़लत हैं। मसलन हमा औसत (ہمہ اوست) वग़ैरा। और मैं ये कह चुका हूँ कि जो कुछ उनके ख़यालों में था वही उनकी माअर्फ़त थी। पस उनकी माअर्फ़त में देखो कि कहाँ तक ग़लती थी। और इस का सबब यही हुआ कि माख़ज़ माअर्फ़त नाक़िस था। इसलिए नाक़िस माअर्फ़त हासिल हुई जिसका बुतलान (ग़लत होना) अब ज़ाहिर हो गया। पस सोचो कि वो लोग अब ग़लत ख़्याल ले कर अपनी रूहों में किधर गए होंगे।

जो माअर्फ़त सूफ़िया ने अपनी कुतुब तसव्वुफ़ से हासिल की है। और जो माअर्फ़त हिन्दू ने वेदों और शास्त्रों वगैरा से हासिल की है। और जो माअर्फ़त क़लंदरों ने अपने मशरब (मज़हब, मिजाज़) कलंदरियाह और इश्क़िया नारा-ज़नी से हासिल की है, और जो जो बातें ये जदीद (नए) मज़ाहिब वाले लोग अपने ख़यालात से पैदा कर रहे हैं। ये सब तंग व तारीक और पुर ख़तर और बे तसल्ली हैं। क्योंकि वो सब ऐसी राहें हैं कि इन्सान ने अपने से ख़ुदा तक निकालने का इरादा किया है। अक़्ल कहतीं है कि ऐसी राहों से आदमी ख़ुदा तक नहीं पहुंच सकता। क्योंकि वो ख़ुदा को नहीं जानता।

इन्सान ख़ुद से ख़ुदा तक राह नहीं निकाल सकता हाँ ख़ुदा ख़ुद से इन्सान तक राह निकाल सकता है। और उसने राह निकाली भी है। क्योंकि उसने दुनिया के शुरू से पैग़म्बरों को भेजा कि अहले दुनिया के मुअल्लिम हों और उस ने पैग़म्बरों के वसीले से इल्हाम से बाइबल मुक़द्दस को लिखवाया कि आदमीयों के हाथ में माअर्फ़त इलाही का दफ़्तर हो। और वो अपनी रूह से तालिबान हक़ के लिए हिदायत करने के लिए हमेशा तैयार रहा, और अब भी तैयार है।

फिर जिन लोगों ने पैग़म्बरों को माना और बाइबल से माअर्फ़त हासिल की उनके ख़यालात भी कलीसिया के दफ़्तर में मर्क़ूम हैं। अब अगर कुछ इल्म और कुछ अक़्ल और कुछ इन्साफ़ रखते हो तो उठो और अपनी माअर्फ़तों को इस माअर्फ़त के साथ मुक़ाबला करो कि जो बाइबल से है। तब तुम्हें मालूम हो जाएगा कि जो

माअर्फ़त बाइबल से है वो निहायत लंबी चौड़ी, ऊंची, गहिरी, रोशन और पुर-तसल्ली और ज़िंदगी बख़्श चीज़ है। और तमाम दुनियावी मस्नूई (खुद-साख्ता) मार्फ़तों पर ऐसी ग़ालिब है जैसे अल्लाह तआला सब चीज़ों पर ग़ालिब है।

ख़ुदा की ज़ात-ए-पाक का सहीह इल्म, और उस की सिफ़ात क़दीमा का सहीह बयान और उसकी मर्ज़ी और इरादों का ज़िक्र, और उस के गुज़शता अजीब कामों और इंतज़ामों का तज़्किरा, और उस के इन अजीब कामों और इंतज़ामों का बयान जो हर-रोज़ दुनिया में नज़र आते हैं। और उस की जलील हिक्मत और पेश-बीनी की कैफ़ीयत वग़ैरा बातें जिस क़द्र बाइबल से मालूम होते हैं। सारी दुनिया में कोई किताब नहीं है कि इन उमूर का ऐसा बयान करे।

लेकिन बाइबल को पढ़ना और सीखना चाहीए उस के हर एक लफ़्ज़ पर ग़ौर करके और हर लफ़्ज़ के नीचे जो दक़ाईक़ मुंदरज हैं कि उस लफ़्ज़ की रोशनी में और आरीफ़ान बाइबल ने इलाही रूह की मदद से दर्याफ़्त कर के अपनी किताबों में लिखे हैं। उन सबको दर्याफ़्त करके पढ़ने का नाम बाइबल मुक़द्दस का पढ़ना है।

क्योंकि किसी शैय की पूरी कैफ़ीयत उसी वक़्त मालूम होती है जब उस की ख़ूबी और बुराई में ख़ूब ग़ौर की जाती है। ऐसा ही मुआमला वेदों और क़ुरआन वग़ैरा के साथ भी बरतना वाजिब है। ताकि किसी की निस्बत कोई अम्र हक़-तल्फी का वक़ूअ में ना आए। अवामुन्नास को ऐसी तक्लीफ़ नहीं दी जाती। वो अपनी लियाक़त और ताक़त के मुनासिब जो कुछ कलामे मतन से सीखते हैं वो माअर्फ़त उनकी नजात के लिए मुफ़ीद है। लेकिन वो जो माअर्फ़त में तरक़्क़ी चाहते हैं और लियाक़त व ताक़त और हिम्मत भी रखते हैं। उन्हें ज़रूर है कि इस इंतिहा बहर माअर्फ़त में ग़ोता ज़नी करने की तक्लीफ़ को गवारा करें। ताकि हक़ीक़ी माअर्फ़त का लुत्फ़ हासिल हो और अनवार-ए-इलाही से मुनव्वर हो जाएं मसीही औलिया अल्लाह ने ऐसा ही काम किया है।

हासिल कलाम ये है कि हक़ीक़ी माअर्फ़त सिर्फ़ बाइबल से हासिल होती है और मसीही वलीयों को हासिल हुई है और बाइबल में मुंदरज है। और पैग़म्बरों से पहुंची है। लेकिन वो माअर्फ़त जो तसव्वुफ़ वग़ैरा से है वो नादानी के ख़यालात हैं जो उड़ गए और उड़ते जाते हैं। और वो जो इस पर फ़रेफ़्ता (दीवाने) हैं आख़िर को शर्मिंदा होंगे। और हाए अफ़्सोस कहेंगे। क्योंकि उन्होंने ख़ुदा के कलाम को ज़लील और हक़ीर समझा। और उस पर तवज्जा ना की मगर इन्सानों की बातों को मुफ़ीद और मोअतबर क़रार दिया था। इस की सज़ा ख़ुदा की अदालत में उठानी होगी।

14 फ़स्ल शरीअत तरीक़त हक़ीक़त के बयान में

मुश्रअत अलमा (مشرعت الما) नहर के घाट को कहते हैं। पस पानी पर जाने की राह को शराअ या शरीअत कहते हैं फिर दीन की राह का नाम शरीअत पड़ गया है क्योंकि वो भी अनहार जन्नत पर जाने की राह उन के गुमान में है मुहम्मदी लोग इस्लाम की राह को शरीअत कहते हैं और समझते हैं कि हर पैग़म्बर एक शरीअत लाया है। लेकिन ये उनका ख़्याल ग़लत है ख़ुदा की तरफ़ से सिर्फ दुनिया में एक ही शरीअत आई है जो मूसा लाया है और सब नबी जो पैदा हुए इसी के ख़िदमतगुज़ार थे इस मुफ़स्सिल शरीअत का ख़ुलासा ख़ुदा ने हर इन्सान के दिल में यद-ए-क़ुदरत से लिख रखा है और वो ये है कि सब चीज़ों से ज़्यादा ख़ुदा को और अपनी जान के बराबर बनीनौ इन्सान को प्यार करना चाहिए। अब ख़्वाह उस के मुवाफ़िक़ हो या ना हो मगर सब का दिल इस बात को मानता है मगर सूफ़िया की बोली में ज़ाहिरी राह व रसूम मुक़र्ररा इस्लाम का नाम शरीअत है। गोया दीन दारी की सूरत-ए-ज़ाहिरी को वो शरीअत समझते हैं।

तरीक़त (طریقت) ये लफ़्ज़ तरीक़ (طریق) से है जिस के मअनी हैं आम रास्ता हर कहीं जाने की राह को तरीक़ (طریق) कहते हैं और ये लफ़्ज़ तरीक़ से बना है। जिसके मअनी हैं कूटना और तरीक़ बमाअनी मतरूक है यानी कुटा हुआ, यानी राह जिसको आदमी अपने पैरों के चलने से कूटते हैं। सूफ़ी समझते हैं कि शरीअत आम राह है। और तरीक़त ख़ास राह है ख़ुदा से मिलने का। और वह उनके तसव्वुफ़ की चाल है इस सूरत में मुहम्मदी शरीअत से उनका तसव्वुफ़ अफ़्ज़ल ठहरा। बाअज़ मुहम्मदी आलिमों ने इस मुश्किल के दफ़ाअ करने को यूं कहा है कि दीन की ज़ाहिरी सूरत शरीअत है और इस की बातिनी जान तरीक़त है। ये भी उनकी ग़लती है। वो दीन की बातिनी जान किस को कहते हैं? आया इस कैफ़ीयत को जो मुहम्मदी अहले-शराअ की बातिनी कैफ़ीयत है, या उस कैफ़ीयत को जो सूफ़िया के वलीयों की बातिनी कैफ़ीयत थी? ये तो दो कैफ़ियतें जुदा-जुदा साफ़ अक़्ल से नज़र आती हैं। और तरीक़त का लफ़्ज़ सूफ़िया का है। जो उन्होंने अपने सुलूक की चाल की निस्बत इस्तिमाल किया है। और शरीअत-ए-मुहम्मदी से अफ़्ज़ल और ख़ुदा से मिलने की ख़ास राह से इस को बतलाया है। इसलिए वो शरीअत-ए-मुहम्मदी की ख़ास बातिनी जान नहीं है। बल्कि वो जद्दी (बरखिलाफ) बात है, जो सूफ़िया लाए हैं।

हक़ीक़त ये लफ़्ज़ हक़ से है यानी सच्चाई, कशफ़-उल-लुग़ात (کشف اللغات) में लिखा है कि :-

حقیقت نزد صوفیہ ظہور ذات حق است بے حجاب تعینات و محو کثرات موہومہ در نور ذات۔

पस ये हमा औसत (ہمہ اوست) का मुक़ाम है, जो कुफ़्र की बात है। अगर कुफ़्र की बात हक़ीक़त है तो काफ़िर हक़ पर हैं। अफ़्सोस कि ये तीनों लफ़्ज़ शरीअत, तरीक़त और हक़ीक़त कैसे ज़लील और मकरूह कर दिए अपने दाही तबाही मअने से, क्योंकि अगर शरीअत सिर्फ़ ज़ाहिरी राह व रसूम का नाम है तो ये ऐसी चीज़ हुई कि जैसे मुर्दा लाश होती है। जिसमें जान नहीं होती। और तरीक़त नाम उस तसव्वुफ़ी राह का जो कि उलूम इस्लाम से ख़ारिज है। और हक़ीक़त नाम है हमा औसत (ہمہ اوست) के ख़्याल का जो बातिल ख़्याल है, और तरीक़त से हासिल होता है। अब सूफ़िया के पास क्या ख़ूबी रह गई? शरीअत-ए-मुहम्मदी को मुर्दा समझ कर फेंक दो और तरीक़त को इसलिए फेंक दो कि इस से हक़ीक़त यानी हमाक़त हासिल होती है। फिर सूफ़ी तो बिल्कुल ख़ाली रह गए। एक सूफ़ी बुज़ुर्ग ने कहा है कि शरीअत नफ़्स इन्सानी से इलाक़ा रखती है और बहिश्त में पहुंचाती है। तरीक़त दिल से इलाक़ा रखती है और वो ख़ुदा से मिलाती है। हक़ीक़त रूह से इलाक़ा रखती और रूह को मुक़ाम हमा औसत (ہمہ اوست) में पहुंचाती है। यानी ख़ुदा से मिलकर ख़ुदा हो जाते हैं। इस बयान पर भी वही आयत आती है जिसका मैंने ऊपर ज़िक्र किया है मजमा-उल-सलूक (مجمع السلوک) में लिखा है कि :-

شریعت در نمازو روزہ بودن　　طریقت در جہاد اندر فزودن
حقیقت روی درولدار کردن　　نظر اندر جمال یار کردن

शरीअत दर नमाज़ व रोज़ा बूदन　　तरीक़त दर जिहाद अंदर फ़ज़ूदन
हक़ीक़त रवी दुर्वलदार करदन　　नज़र अंदर जमाल-ए-यार करदन

ये बयान बज़ाहिर इबारत तो बहुत ख़ूब है लेकिन हासिल इस का भी वही है। जो सूफ़िया के उसूल से पैदा होता है। कि हमा औसत (ہمہ اوست) में जाकर दम लेते हैं।

वो बात और है कि जो हम मानते हैं कि रस्मी शरीअत मसीह में मुकम्मल हो कर अपनी असली रुहानी सूरत में आ गई है। क्योंकि रस्मी और रुहानी में साया और ऐन की निस्बत थी लेकिन यहां सूफ़िया में ये तीनों जुदा-जुदा बातें हैं। और उनमें मुख़ालिफ़त की निस्बत है क्योंकि ये सब इन्सानी बनावटें हैं। ख़ुदा की डाली हुई बुनियाद मुहकम है जो कि बाइबल और मसीहीय्यत है।

15 फ़स्ल यक़ीन के बयान में

जाज़िम रासिख़ (جازم راسخ) साबित एतिक़ाद का नाम सूफ़िया की इस्तिलाह में यक़ीन है। और वो समझते हैं कि यक़ीन की तीन किस्में हैं।

(1) **अव्वल इल्म-उल-यक़ीन** (علم الیقین) ये हासिल होता है कि दलाईल क़तिय्याह (قطعیہ) से मसलन बुरहान या ख़बर मुतवातिर से।

(2) **दुवम ऐन-उल-यक़ीन** (عین الیقین) ये हासिल होता है। आँख के मुशाहिदे से।

(3) **सोइम हक़्क़-उल-यक़ीन** (حق الیقین) ये हासिल होता है, किसी शैय के हासिल के होने से बतवातिर ख़बर मिली है कि दोज़ख़ और बहिश्त मौजूद हैं। जब हमने इस ख़बर पर यक़ीन किया तो ये इल्म-उल-यक़ीन (علم الیقین) हुआ और आँख से दोज़ख़ और बहिश्त को जा कर देख लिया तो ये ऐन-उल-यक़ीन (عین الیقین) हुआ और जब दोज़ख़ या बहिश्त में डाले जाते हैं तो तब हक़्क़-उल-यक़ीन हुआ।

मैं समझता हूँ कि इन इस्तलाहों में कुछ ग़लती नहीं है। ये दुरुस्त बातें हैं लेकिन मुझे हैरानी इस अम्र में है कि इन सूफ़िया के अक़ाइद और ख़यालात तो इल्म-उल-यक़ीन (علم الیقین) के रुतबे से भी बहुत नीचे गिरे हुए है। और वो लोग हरगिज़ बुरहान से और ख़बर मुतवातिर से अपने अक़ाइद का सबूत नहीं दे सकते। फिर वो ऐन-उल-यक़ीन और हक़्क़-उल-यक़ीन का उन अक़ाइद की निस्बत क्योंकर दम भरते हैं। उनके पास सिर्फ तुहमात हैं और उन का नाम यक़ीनात उन्होंने रख छोड़ा है। अच्छी अच्छी इस्तेलाहें मुहम्मदी अहले-शराअ के मुक़ाबले में जमा की हैं। लेकिन उनके अंदर कुछ ज़िंदगी और ख़ूबी नहीं है।

16 फ़स्ल वहदत-उल-वजूदी और शुहूदी के बयान में

सब बुरी बातों से ज़्यादा और ख़तरनाक और नालायक़ बात सूफ़िया में ये है कि वो सब के सब बाला-इत्तिफ़ाक़ वहदत-उल-वजूद के क़ाइल हैं और वहदत-उल-वजूद के मअनी कुतुब तसव्वुफ़ और ग़ियास-उल-लुग़ात (غیاث اللغات) में यूं मर्क़ूम हैं :-

وحدت الوجود باصطلاح متصوفین موجودات راہمہ یک وجود حق سبحانہ تعالے دانستن وجود باماسوارا محض اعتبارات شمردن چنانچہ موج وحباب وگرداب قطرہ وژالہ ہمہ رایک آب پندآشتن

यही हमा औसत (ہمہ اوست) है जिसके सब सूफ़ी क़ाइल हैं और तमाम तसव्वुफ़ की सारी इमारत इसी बुनियाद पर क़ायम है। हाँ बहुत मुहम्मदी आलिम इस के क़ाइल नहीं हैं और इस ख़्याल को कुफ़्र समझते हैं तो भी सदहा बुज़ुर्ग आलिम मुहम्मदी जिन्हों ने इस्लाम में तसल्ली नहीं पाई और नाचारी से तसव्वुफ़ की तरफ़ झुके हैं इस नालायक़ ख़्याल की तरफ़ माइल नज़र आते हैं और ऐसी तक़रीरें करते हैं कि अहले शराअ को भी थाम रखें और इस अक़ीदे को हाथ से ना छोड़ें क्योंकि ये अक़ीदा अगर गुमराही ठहरे तो उनके सब औलिया गुमराह साबित होते हैं और तसल्ली की कोई बात उनके पास नहीं रहती **क्योंकि तमाम क़ुरआन में तसल्ली का तो कोई मुक़ाम नहीं है।** सूफ़िया के घर में ये हमा औसत (ہمہ اوست) का ख़्याल उन्हें कुछ तसल्ली देता है।

सूफ़िया के सब ख़ानदानों में नक़्शबंदिया ख़ानदान ज़्यादा-तर बाशरअ और एहतियात का घराना है। इसी घराने के मुरीद हमारे शहर पानीपत के एक बुज़ुर्ग-ए-आज़म फ़ाज़िल जलील क़ाज़ी सना उल्लाह मुसन्निफ़ तफ़्सीर मज़हरी[9] वग़ैरा हैं। और वो मिर्ज़ा मज़हर जान जानाँ बुज़ुर्ग दिल्ली के मुरीद थे। मिर्ज़ा साहब के तसव्वुफ़ की सारी कैफ़ीयत एक किताब में मुंदरज है। जिसका नाम माअमूलात मज़हरियाह[10] है। हिन्दुस्तान में जिस क़द्र तसव्वुफ़ की किताबें लिखी गईं। ये किताब उन सब में आला रुत्बे की है और क़ाज़ी साहब ने इस की सेहत पर गवाही लिखी है। वहदत-उल-वजूद के मसले की बाबत इसमें यूं मर्क़ूम है। (सफ़ा 102) सानेअ (صانع) और मसनूअ (مصنوع) में एयनीयत (عینیت) है या ग़ैरियत (غیریت) इस बारे में शराअ साकित है, लेकिन कामिलें (کاملیں) पर ये बेहद कशफ़ से ज़ाहिर हुआ है। मुराद ये है कि कामिलियन (کاملین) ने कशफ़ से मालूम किया है, कि एयनीयत (عینیت) है। पस ये हमा औसत (ہمہ اوست) का इक़रार हो गया।

फिर इस ख़ानदान में नामदार बुज़ुर्ग हुए हैं। शेख़ अहमद सरहिंदी हैं जिनको मुजद्दिद अलीफ़-सानी कहते हैं और शाह अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी उनकी बड़ी

---

9 http://www.maktabah.org/aa/item/920-tafsir

10 http://www.maktabah.org/fa/popular/item/2134-mamoolat-e-mazhariya

तारीफ़ शरह फ़ुतूह अलगैब के ख़ातमे में लिखते हैं और फ़िल-हक़ीक़त वो साहब-ए-इल्म और संजीदा सूफ़ी थे। उनके मक्तुबात से उनकी लियाक़त ज़ाहिर है, कि मुहम्मदी दीन का इल्म उनको पूरा था।

अनवार-उल-आरिफिन सफ़ा 47 में इनका बयान यूं मर्क़ूम है कि हक़ायक़-उल-अशिया साबतयह (حقائق الاشیا ثابتہ) ये मुआमला हवास से इलाक़ा रखता है। लेकिन आरफीन हवास अक़लीया से आगे बढ़ गए हैं उन्होंने वहां जा कर हमा औसत (ہمہ اوست) का भेद पाया है। पस इन बुज़ुर्गों के बयान से ज़ाहिर है कि वो शराअ मुहम्मदी को भी क़ायम रखते हैं और हमा औसत (ہمہ اوست) भी छोड़ना नहीं चाहते।

ये जो ऊपर बयान हुआ कि हमा औसत (ہمہ اوست) का भेद हवास से दर्याफ़्त नहीं हो सकता। बल्कि हवास से यही साबित है कि हक़ायक़-उल-अशिया साबतयह (حقائق الاشیا ثابتہ) लेकिन ये भेद कश्फ़ से मालूम हुआ है। और कामिलियन हवास से आगे बढ़ गए हैं और वहां से भेद को दर्याफ़्त करके लाए हैं। ये बात सादा लौहों के दिलों को ख़ुश करने के लिए किया ख़ूब मालूम होती है। फ़िल-हक़ीक़त धोका और रूहों की हलाकत के लिए ज़हर है।

जिन अश्ख़ास को सूफ़िया कामिलीन कहते हैं। हमें उनमें कुछ कमाल नज़र नहीं आता और जिन बातों को वो कमालात कहते हैं। वो हमें नुक़्सानात मालूम होते हैं। फिर इन बातों की निस्बत जिनको वो उनके मुकाशफ़ात कहते हैं। हुज्जत बाक़ी रहती है। हम क्योंकर यक़ीन करें कि वो उनके इलाही मुकाशफ़ात हैं? क्यों ना कहें कि तुहमात हैं। जो क़ुव्वत-ए-वाहिमा (वहम की ताक़त) से निकलते हैं। सच्चे और झूटे नबियों में इम्तियाज़ (फर्क़) करने के लिए कुछ क़वाइद अक़लीया और नक़लिया ज़रूर मुक़र्रर हैं। और उन क़वाइद से जब कोई सच्चा नबी साबित होता है तो तब उस की बातें इस ख़्याल से मानी जाती हैं कि वो ख़ुदा का नबी है। ये सूफ़ी कौन हैं? जिनको मकाशफ़े होते हैं, और हवास से आगे बढ़ते हैं। और वहां से जहां हवास का काम नहीं है कुछ लाते हैं। और अपने हवास में रखकर लाते हैं। और मुरीदों के हवास में डालते हैं। उन बातों को जो हवास से साबित नहीं हो सकतीं और वो जो अहले-हवास हैं जिन्हें ख़ुद मकाशफ़े नहीं हुए वह उनकी ताइद में कोशिश करते हैं। बल्कि उनके आवर्द को अपने ईमान की जगह में रखते हैं।

हमें दुनिया में तीन क़िस्म के लोग मालूम होते हैं। बाअज़ ख़ुदा के मुन्किर हैं मगर जहान की, मौजूदगी के क़ाइल हैं। क्योंकि जहान मौजूद नज़र आता है। ये लोग

समझते हैं कि जहान का वजूद और इंतिज़ाम सब कुछ दहर यानी ज़माने से है और ये लोग दहरिया कहलाते हैं।

बाअज़ ख़ुदा के क़ाइल हैं और समझते हैं कि दहर भी ख़ुदा की ख़ल्क़त में से हैं। इन लोगों की भी दो किस्में हैं। यानी वो जो ख़ुदा के क़ाइल हैं। दो तरह से ख़ुदा को समझते हैं। एक वो हैं जो हमा औसत (ہمہ اوست) में ख़ुदा को बतलाते हैं, और वो समझते हैं कि सानेअ और मसनूअ में एनियत है ना ग़ैरियत यानी ख़ुदा ने जहान को अपने ही अंदर से निकाला है या ख़ुदा ख़ुद जहान बन गया है। पस इस जहान की और ख़ुदा की एक ही माहीयत (असलियत) और हक़ीक़त हुई। क़दीम ज़माने के मिस्री और यूनानी बुत परस्तों का भी गुमान था, और वेदों में भी ऐसा ही लिखा है। क़ौम सूफ़िया जो कि बुत-परस्त क़ौम थी। उनको भी क़दीम बुत परस्तों से विरासतन यही ख़्याल पहुंचा था कि वही ख़्याल मुहम्मदी सूफ़ियों में अब तक चला आता है। और इस में मुतअस्सिब हो गए। वो ये नहीं कहते हैं कि हमने ये ख़्याल बुत परस्तों से लिया है। बल्कि ऐब-पोशी के लिए कहते हैं कि हमारे कामिलीन को मुकाशफ़ा हुआ है। भला साहब जब आप लोग दुनिया में ना थे। तो क्या इस का मुकाशफ़ा उस वक़्त भी बुत परस्तों को हुआ था? या उन का अक़्ली ख़्याल था जो बातिल था।

दूसरे वो लोग हैं जो कि हमा-अज़-ओसत (ہمہ ازاوست) के क़ाइल हैं। और समझते हैं कि सानेअ और मसनूअ में ग़ैरियत है ना एनियत और कि जहां अदम से वजूद में आया है और कि ख़ुदा की और कुछ माहीयत (असलियत) है, और अश्या जहां की और कुछ माहीयतें हैं। और ये कि हक़ायक़-उल-अशया साबततुन हक़ है, हवास से भी और मकाशिफ़ों से भी।

हम सब मसीही और यहूदी जो कि पैग़म्बरों के पैरों हैं। इसी ख़्याल को मानते हैं। और अक्सर उलमा मुहम्मदिया भी इसी ख़्याल में हमारे साथ हैं। और कलाम-उल्लाह की भी यही ताअलीम है। लेकिन वो मुहम्मदी जो तसव्वुफ़ में क़दम रखते हैं। हमा औसत (ہمہ اوست) का मोहलिक ख़्याल जिससे ख़ुदा की बेइज़्ज़ती होती है वो नहीं छोड़ते।

और ये जो ऊपर कहा गया कि शराअ मुहम्मदी इस बारे में साकित है। सच्च तो ये है कि क़ुरआन में हमा औसत (ہمہ اوست) का ख़्याल साफ़ साफ़ कहीं नहीं लिखा हमा-अज़ोस्त (ہمہ ازوست) का ख़्याल ज़्यादा-तर बयान हुआ है। सिर्फ एक मुक़ाम में सुरह हदीद (देखने) में है जिस से सूफ़ी कुछ इस्तिदलाल करते हैं कि هُوَ الْأَوَّلُ وَالْآخِرُ وَالظَّاهِرُ وَالْبَاطِنُ وَهُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ **वह (सब से) पहला**

और (सब से) पिछला और (अपनी क़ुदरतों से) सब पर ज़ाहिर और अपनी ज़ात से पोशीदा है और वो तमाम चीज़ों को जानता है लफ़्ज़ ज़ाहिर से वो अश्या दीदनी मुराद लेते हैं। और समझते हैं कि ये जो कुछ ज़ाहिर है अल्लाह है लेकिन उलमा मुहम्मदिया इस की तावील यूं करते हैं कि वो बदलाईल ज़ाहिर है। ना बज़ात और हम भी यही मानते हैं कि वो बदलाईल ज़ाहिर है। अहले हमा औसत (بمہ اوست) कहते हैं कि वो बज़ात ज़ाहिर है उसी का नाम शुहूद है। और ये भी कहते हैं कि मुहम्मद साहब मुफ़रदों में से थे तो क्या ताज्जुब है कि उनकी मुराद लफ़्ज़ ज़ाहिर से वही हो कि जो सूफ़ी कहते हैं। फिर ये लोग दो वसनई हदीसें भी सुनाते हैं। कि हज़रत ने फ़रमाया कि :-

(انا اَحمد بلامیم وانا عرب بلا عین) यानी मैं अहमद और रब हूँ। ये तो कुफ़्र के कलिमे हैं। मोअतबर किताबों में इन हदीसों का ज़िक्र नहीं है, शायद सूफ़िया ने बनाई हों।

हाँ एक हदीस और है जो मोअतबर किताबों में मज़्कूर है। जिससे हमा औसत (بمہ اوست) का ख़्याल हज़रत के ज़हन में कुछ मालूम होता है। वो ये है कि **يؤذيني ابن آدم؛ يسب الدهر، وأنا الدهر** कहता है कि इन्सान मुझे दुख देता है। इसलिए कि वो दहर को गाली देता है। और मैं ख़ुद दहर हूँ। इस हदीस में हज़रत दहरियों का मज़्हब साबित करते हैं। और अल्लाह को दहर बतलाते हैं।

और नाज़रीन को ये भी मालूम हो जाये कि अगरचे बज़ाहिर ये दो फ़िर्क़े हैं यानी दहरीए और हमा औसत (بمہ اوست) वाले मगर फ़िल-हक़ीक़त हासिल उनका एक ही है। दहरिया कहते हैं कि ख़ुदा नहीं है। जो कुछ है ये जहान है। हमा औसत (بمہ اوست) वाले कहते हैं कि ख़ुदा है मगर सब कुछ ख़ुदा है। ये तो एक ही बात हुई, दो इबारतों में पस जैसे दहरिया बे-ख़ुदा हैं। वैसे हैं हमा औसत (بمہ اوست) वाले भी बे-ख़ुदा हैं।

हमा औसत (بمہ اوست) का ख़्याल अक़्ली तज्वीज़ है। सब पैग़म्बर उस के मुख़ालिफ़ हैं। हाँ सब बुत-परस्त उस को मानते हैं। पस उस के मानने वाला पैग़म्बरों का साथी नहीं। वो बुत परस्तों का साथी है। और जो जिसका साथी है उस का हश्र उसी के साथ होगा। तब सूफ़ी क़ियामत में बुत परस्तों के साथ उठेंगे ना कि पैग़म्बरों के साथ।

हमा औसत (بمہ اوست) के ख़्याल की जड़ ये है कि बाअज़ आदमीयों ने ऐसा समझा कि दुनिया में हर कारीगर जो कुछ बनाता है, किसी माद्दे से बनाता है। बग़ैर

माद्दे के कोई चीज़ किसी कारीगर से नहीं बन सकती। ख़ुदा ने जहान को क्योंकर बनाया? वो माद्दा कहाँ से लाया? तब उनके क़ियास ने जवाब दिया कि माद्दा ख़ुदा ने अपने ही अंदर से निकाला और इस में तसर्रुफ़ कर के सब कुछ ज़ाहिर कर दिया, पस सब कुछ उस में से है। इसलिए सब कुछ वही है ये ही दलील वहदत-उल-वजूद की उनके पास है।

ख़ुदा के पैग़म्बर जो ख़ुदा से सुनकर बोलते हैं। कहते हैं कि ख़ुदा क़ादिर-ए-मुतलक़ है। उस की क़ुदरत मुतलक़ है, यानी आज़ाद उस की क़ुदरत के लिए कोई हद नहीं वो कहीं रुक नहीं सकती। वर्ना वो मुक़य्यद (क़ैदशुदा) क़ुदरत होती ना कि मुतलक़ (आज़ाद)। पस इस क़ुदरत से उसने जहान को पैदा किया अदम से निकाला और अदम की तारीफ़ इल्म-ए-हिक्मत में ये है (العدم یقابل الوجود فلیس للعدم وجود)। यानी अदम मुक़ाबले में है वजूद के इसलिए अदम का वजूद ना हुआ। जिसके लिए फ़ारसी लफ़्ज़ नीस्ती (نیستی) है। यानी ला वजूद (मतलब जिसका कोई वजूद ही नहीं)। पस ख़ुदा ने जहान को ना अपने अंदर से माद्दा निकाल कर पैदा किया बल्कि नीस्ती (نیستی) में से पैदा किया है। लफ़्ज़ क्रियेट (Create) अंग्रेज़ी में और ख़ल्क़त (خلقت) अरबी में और पैदा (پیدا) फ़ारसी में और बारा (بارا) इब्रानी में ऐसे मअनी में आता है। किसी चीज़ का बग़ैर माद्दे के पैदा करना। पस दुनिया के कारीगर कुछ चीज़ों से कुछ चीज़ें बनाते हैं। क्योंकि उस की क़ुदरत महदूद और मुक़य्यद (क़ैदशुदा) है और वो क़ादिर-ए-मुतलक़ नहीं। ख़ुदा क़ादिर-ए-मुतलक़ है। वो नीस्ती (نیستی) से बहुक्म ख़ुद चीज़ें पैदा करता है। अगर हम ख़ुदा को दुनिया के कारीगरों की मानिंद ख़्याल करें तो उस को उस की आली शान से गिराते हैं और मर्दूद होते हैं।

इस के सिवा ये बात है कि अगर ये जहान ख़ुदा के अंदर से निकला हुआ होता तो ख़ुदा की माहीयत (असलियत) में इस जहान को भी दख़ल होता। और इस पाक माहीयत (असलियत) के जो ख़ासे हैं वो जहान में भी पाए जाते। देखो ख़ुदावंद यसूअ मसीह, ख़ुदा की ज़ात में से निकला और दुनिया में आया है और रूहुल-क़ुद्दुस ख़ुदा के और मसीह के अंदर से आता और ग़ौर करने से बर्गज़ीदों की रूहों में मालूम होता है। और जो ख़ासीयत इलाही माहीयत (असलियत) की है। वही ख़ासीयत इन दोनों शख़्सों में बराबर पाई जाती है। जो ख़ुदा की ज़ात में से है। उस में ख़ुदा की ख़ासीयत है। अगर जहान ख़ुदा के अंदर से होता तो जहान में ईलाही ख़ासीयत ज़रूर होती। और जहान तो कुछ भी नहीं है ना कोई शैय क़ायम बिलज़ात है ना किसी चीज़ में क़ुदरत और इल्म और ज़िंदगी बिलज़ात है। हर शैय मालूल है। और हर इल्लत के लिए इल्लत है। और वो जो इल्लत-उल-अलल (علۃ العلل) है, मख़्फ़ी (छिपी) है। और हर

मालूल के लिए दो तरफ़ैन हैं। एक वो तरफ़ैन है जिससे उस का इलाक़ा इल्लत-उल-अलल (علۃ العلل) है, बवास्ता अलल (العلل) के है, और उसी से वह बहाल और मौजूद है। दूसरी तरफ़ वो है जिससे उस का इलाक़ा नीस्ती की तरफ़ है। अगर इल्लत-उल-इलल (علۃ العلل) उस को छोड़ दे। तो वो मालूल नेस्त हो जाता है। और इस से ज़ाहिर हुआ कि जहान नीस्ती से बक़ुदरत वाजिब-उल-वजूद मौजूद हुआ है। अगर वहदत-उल-वजूद सहीह है तो ख़ुदा में नीस्ती (نیستی) में घिरा हुआ है हर तरफ़ से पस हमा औसत (ہمہ اوست) नहीं है। बल्कि हमा अज़ औसत है और जो ख़ुदा है सबसे न्यारा है उस की माहीयत (असलियत) कुछ और है। और मौजूदात की माहीयतें कुछ और हैं। हमा औसत (ہمہ اوست) के इब्ताल (गलत साबित करने) में बहुत सी माहीयतें हैं। जो दीगर मुसन्निफ़ों की किताबों में मर्क़ूम हैं। और अस्बात के बारे में सिवाए दो तीन वहमी बातों के कुछ भी नहीं है।

गुज़श्ता ज़माना तारीकी का ख़ुसूसुन ग़ैर अक़्वाम पर ऐसा था कि उस में इस हमा औसत (ہمہ اوست) के ख़्याल में बाअज़ लोगों ने कुछ तसल्ली इख़्तियार की थी। मगर बातिल तसल्ली थी। वो समझते थे कि हम ख़ुदा में से निकले हैं, और मर कर उस में मिल जाऐंगे। और वो लोग अपने जीते जी बातकल्लुफ़ इस बातिल ख़्याल को अपने ज़हन में पकाते थे। और फ़िक्री बदीही ख़्याल जो हमा अज़-वस्त (ہمہ ازاوست) का है बमुशकिल ज़हन से निकालते थे। और शैतान मुजस्सम हुए फिरते थे। कहते थे कि हम ख़ुद ख़ुदा हैं। और इस से शैतान का मतलब ख़ूब पूरा होता था। कि ख़ुदा की बेइज़्ज़ती हो। अगर हमा औसत (ہمہ اوست) सहीह बात हो तो क्या ज़रूर है कि सूफ़ी इतनी रियाज़त करे कि बे-रियाज़त और बारियाज़त आदमी सब बराबर हैं। और बुत परस्ती का अम्र भी मकरूह नहीं हो सकता। और नेकी बदी में कुछ हाजत फ़र्क़ की नहीं है। ईमानदारी और बेईमानी फ़रमांबर्दारी और ना-फ़रमानी बराबर हैं क्योंकि सब कुछ ख़ुदा है नऊज़ुबिल्लाह मिन ज़ालिक।

अब रोशनी का ज़माना आ गया है। कलाम-उल्लाह की रोशनी और इल्मी रोशनी नमूदार हुई है। और इस ख़्याल का बुतलान ज़्यादा-तर वाज़ेह हो गया है। और मालूम हो गया है कि वेदें वग़ैरा वो सब किताबें जिनमें ये ख़्याल मर्क़ूम है। अल्लाह की तरफ़ से हरगिज़ नहीं हैं। इन्सानी तज्वीज़ से लिखी गई हैं। और उनसे बा सबब इस ख़्याल के ख़ुदा की बेइज़्ज़ती है। और ये भी मालूम हो गया है कि जो लोग इस ख़्याल में मर गए हैं। और औलिया अल्लाह समझे गए हैं वो हरगिज़ ख़ुदा रसीदा ना थे। इस ख़्याल को पहुंचे हुए थे। पस ख़ुदा का दोस्त होना तो दरकिनार रहा ख़ुदा को पहचाना भी ना था। और जिसको उन्होंने ख़ुदा समझा था, वो बुतलान था। अब फ़रमाएं कि वो ख़ुदा के दोस्त थे या बुतलान के?

ख़ुदा पहचाना जाता है ख़ुदा के कलाम से, ना महज़ दलाईल अक़लीया से ना अहमक़ फ़क़ीरों के ख़यालात से ना क़दीम बुत परस्तों की तजवीज़ात से ना हूहक़ करने से ना रियाज़त से ना ज़िक्र फ़िक्र से मगर ख़ुदा के कलाम से, और वह सूफ़ियों और मुहम्मदियों और बुत परस्तों और अक़्ल परस्तों के पास नहीं है। फिर वो क्योंकर ख़ुदा शनासी के दम मारते हैं। अगर कोई शख़्स ख़ुदा शनासी का तालिब हो तो वो बाइबल शरीफ़ के क़रीब आए और जो कुछ बाइबल शरीफ़ ख़ुदा के बारे में बतलाती है, उस पर ग़ौर करे। फिर अपनी तमीज़ से पूछे कि ख़ुदा कैसा है और किधर है।

17 फ़स्ल अत्वार तक़र्रुब (اطوار تقرب) सूफ़िया के बयान में

सूफ़िया के वह अत्वार जिनके वसीले से वो ख़ुदा से मिलना चाहते हैं उनकी किताबों से मालूम हुआ कि एतिक़ाद वासिक़ और ख़ुलूस और फ़िरोतनी और रियाज़त और तर्क-ए-दुनिया ये पाँच वसीले हैं।

लेकिन इनका तमाम ज़ोर तसव्वुरात पर है। बाअज़ ख़यालों को ज़हन में पकाते हैं जब उनमें पुख़्ता हो गए तो गोया महव होते हैं। तब समझते हैं कि हम कमालात को पहुंचे चुनान्चे आइन्दा फसलों में उनके ख़ास ख़यालात का ज़िक्र आएगा। जिनके पुख़्ता करने से वो वली हैं।

इस फ़स्ल में आम तौर पर में उनके अत्वार (तौर तरीक़ों) की तरफ़ देखता हूँ कि क्या हैं। पस वो पाँच बातें जो ऊपर मज़्कूर हुईं। अगर इफ़रात व तफ़रीत से महफ़ूज़ हों। और मुनासिब तौर से अमल में आएँ तो बहुत ख़ूब हैं। लेकिन उन पाँच बातों में उस असल को नहीं पाता। जो अक़लन व नक़लन ख़ुदा परस्ती की जड़ है जिस के साथ हर ख़ूबी फ़िल-हक़ीक़त ख़ूबी होती है। और जिसके बग़ैर तमाम ख़ूबियां बर्बाद और ग़ैर मुफ़ीद हैं।

और वो असल ये है कि ख़ुदा-परस्त आदमी में सबसे पहले सहीह और ज़िंदा ईमान होना चाहिए।

दुनिया में हर फ़िर्क़ा अपने गुमान में एक ईमान का मुद्दई है और इस की हिमायत करता है और वो सब ईमान जो दुनिया के फ़िर्क़ों में हैं हरगिज़ यकसाँ नहीं

हैं और सब फ़िर्क़े ऐसा समझते हैं कि गोया हमने बावसीला अपने ईमान के ख़ुदा को राज़ी किया है।

ये कैफ़ीयत दुनिया में ईमानों की देख के क्या करोगे, अपने ही क़ौमी ईमान को बे दलील या ज़बरदस्ती की दलील से सहीह ईमान समझोगे या तमाम दुनिया के ईमानों का मुक़ाबला करके सहीह ईमान तलाश करोगे? और उस को ख़ुदा की रजामंदी का वसीला समझ कर इख़्तियार करोगे? अगर दानाई और इन्साफ़ है तो ऐसा ही करोगे।

लफ़्ज़ ईमान की बहस मुहम्मदी किताबों में बहुत हुई है। किताब ऐनी शरह सहीह बुख़ारी और फ़त्ह-उल-मुबीन शरह अर्बईन और शरह मवाक़िफ़ वग़ैरा में बहुत कुछ लिखा है, लेकिन ईमान के बारे में जो बात फ़िक्र की है, इस का वहां कुछ भी ज़िक्र नहीं है।

जो कुछ वहां लिखा है उस का ख़ुलासा ये है कि बाअज़ ने कहा है कि ईमान सिर्फ दिल का काम है यानी तस्दीक़, बाअज़ ने कहा कि दिल का और ज़बान का इकट्ठा काम है यानी दिल से यक़ीन ज़बान से इक़रार, बाअज़ ने कहा है कि ईमान सिर्फ दिल का काम है यानी तस्दीक़, बाअज़ ने कहा है कि सिर्फ ज़बान का काम है यानी इक़रार, बाअज़ ने कहा है कि दिल और ज़बान का इकट्ठा काम है, यानी दिल से यक़ीन और ज़बान से इक़रार, बाअज़ ने कहा कि दिल का और ज़बान का और तमाम बदनी आज़ा का काम है, यानी आमाल भी शामिल हैं। फिर ये कि आया ईमान और इस्लाम एक ही बात है, या दो जुदा-जुदा चीज़ें? बाअज़ ने कहा कि एक ही चीज़ है, बाअज़ ने कहा दो चीज़ें हैं। फिर ये कि आया ईमान घटता बढ़ता है। किसी ने कहा कि नहीं फिर ये कि आया ईमान मख़्लूक़ है या ग़ैर मख़्लूक़ अहमद बिन हम्बल ने कहा कि ग़ैर मख़्लूक़ है, और लोगों ने कहा कि मख़्लूक़ है। फ़ैसला यूं हुआ कि आदमी का इक़रार जो उस का फेअल है मख़्लूक़ है और हिदायत-ए-ईलाही जो कि ख़ुदा का काम है, वो ग़ैर मख़्लूक़ है। पस शैय मख़्लूक़ और ग़ैर मख़्लूक़ मिलकर एक ठहरा।

असल बात का कुछ ज़िक्र नहीं कि जिस चीज़ का इक़रार और यक़ीन होता है वह क्या है और कहाँ से है? हम मसीहीयों का ज़ोर इस बात पर बहुत है कि क्या है और कहाँ से है।

ये दो अल्फ़ाज़ कि हमारा ईमान किया है और कि कहाँ से है? अगर नाज़रीन याद रखें तो जल्द सहीह ईमान पाएँगे। इस सवाल का जवाब कि कहाँ से है? और क्या है? मुहम्मदी लोग यूं देंगे कि हमारा ईमान क़ुरआन व हदीस से है और ख़ुदा की

वहदत-ए-फ़र्दी और मुहम्मद साहब की रिसालत पर है। सूफ़ी यूं कहेंगे कि हमारा ईमान क़ुरआन व हदीस और अक़्वाल सूफ़िया से है। और ख़ुदा की वहदत-उल-वजूदी और मुहम्मद साहब की रिसालत पर और इंतिज़ाम कुतुबिया पर है। हम मसीही यूं कहें गोयाकि हमारा ईमान तमाम सच्चे पैग़म्बरों की किताबों में से है। ना कि आदमीयों की हदीसों और अक़्वाल में से। और ख़ुदा की वहदत और तस्लीस मजीद पर है और इस बात पर है कि यसूअ मसीह इब्न-ए-अल्लाह और हमारे गुनाहों का ख़ुदा की तरफ़ से भेजा हुआ कफ़्फ़ारा है। और उसी के हाथ में सब कुछ है। लफ़्ज़ "कहाँ से" में हम ये ढूंडते हैं कि आया माख़ज़ ईमान मोअतबर है या नहीं और लफ़्ज़ "क्या" में हम ये तलाश करते हैं कि वो चीज़ जो रूह में रखी जाती है। इस की अबदी ज़िंदगी के लिए मुफ़ीद है या नहीं। पस हमारे ईमान को और इस के माख़ज़ को और अपने ईमानों को उनके माख़ज़ों को देखकर आप ही इन्साफ़ कर सकते हैं कि सहीह ईमान किया है।

सूफ़िया वग़ैरा का ईमान ना रूह की मर्ज़ी के मुनासिब है और ना उस का माख़ज़ मोअतबर इसलिए उनकी बुनियाद ख़ाम रहती है उसी बुनियाद ख़ाम पर वो इन पाँच बातों पर ज़ोर देते हैं जिनका अब मैं ज़िक्र करता हूँ।

(1) ये वो सच्च कहते हैं कि एतिक़ाद वासिक़ चाहिए लेकिन सच्चाई पर एतिक़ाद वासिक़ चाहिए। ना कि बातिल बात पर सिर्फ एतिक़ाद वासिक़ में ही ख़ूबी नहीं है ख़ूबी सच्चाई में है। बाअज़ बुत परस्तों और जाहिल आदमीयों ने ग़लत बातों पर एतिक़ाद वासिक़ रखकर जान-निसार की है। तो क्या उनका भला हो जाएगा? हरगिज़ नहीं। ये क़ौल बिल्कुल ग़लत है कि पीर मन ख़स अस्त एतिक़ाद मन बस अस्त।

(2) वो ख़ुलूस का ज़िक्र बहुत करते हैं। फ़िल-हक़ीक़त ख़ुलूस अजीब नेअमत है। और हर हाल में मुफ़ीद है। मुनासिब है कि आदमी बे-रिया हो कर पाक नीयत से ख़ुदा-परस्ती और सब काम दुनियावी भी किया करे। इस से कामयाबी होती है। लेकिन जब ख़ुलूस के साथ पत्थर भी पूजे और हिदायत-ए-इलाही के ख़िलाफ़ राह इख़्तियार करे तो और मकरूह व बातिल अक़ाइद में ख़ुलूस के दर पे हो तो ख़ुलूस से क्या निकलेगा? यही कहा जाएगा कि ये आदमी तो नेक नीयत है मगर नादानी के दलदल में फंसा हुआ है। कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि बाख़लूस लोगों पर ख़ुदा की मेहरबानी हुई है। और वह मेहरबानी यही हुई है कि उन्हें राह-ए-रास्त की तरफ़ हिदायत के लिए बाअज़ वसाइल बख़्शे गए हैं। और उनकी नादानी उन पर ज़ाहिर की गई है। और दिखलाया गया है कि जहां से तुम कुछ ढूंडते हो वहां से कुछ नहीं मिल सकता। मसीह ख़ुदावंद की तरफ़ जाओ वहां

से सब कुछ पा सकते हो। पस अगर वो मसीह की तरफ़ आएं तो सब कुछ पाते हैं। वर्ना अपने ख़ुलूस का टोकरा सर पर उठा कर जहन्नम में जाना होगा।

(3) फ़िरोतनी और ख़ाकसारी भी ख़ूबी की सिफ़तें हैं। और दिल की दुरुस्ती के निशान हो सकते हैं। जब कि सच्ची ख़ाकसारी हो वर्ना हो सकता है कि ज़ाहिर में फ़िरोतनी हो और बातिन में पोशीदा ग़रूर नापाक मतलब भरे हों। बाअज़ लोगों ने फ़िरोतनी को इसलिए इख़्तियार किया है कि लोगों से उनकी तारीफ़ हो और उनके बहुत दोस्त और मुरीद हो जाएं। ऐसी फ़िरोतनी नापाक मुराद के साथ ग़ैर मुफ़ीद बल्कि ऐन गुनाह है। **हक़ीक़ी फ़िरोतनी वो है जिस का ज़िक्र मसीह खुदावंद ने किया मुबारक हैं वो जो दिल के ग़रीब हैं। ख़्वाह बज़ाहिर शान व शौकत में हों लेकिन अंदर दिल-ग़रीब है। ऐसे लोगों के साथ बरकत का वाअदा है।**

(4) सूफ़िया का रियाज़त पर बहुत ज़ोर है। और अक्सर देखा जाता है कि जब कोई आदमी दुनिया से अलग हो कर रियाज़त व इबादत में मशग़ूल होता है तब वो बहुत ही जल्द पीर बन जाता है और अहमक़ लोग रियाज़त पर फ़रेफ़्ता हो कर उस के गर्द जमा हो जाते हैं। और उस के लिए करामातें तस्नीफ़ कर डालते और चर्चे उड़ाते हैं। ये सब पीर इसी तरह से पीर मशहूर होते हैं। और अब भी अगर कोई चाहे कि मैं पीर बन जाऊं तो वो दो काम करे अव्वल वो ऐसी जगह जाये जहां बहुत ज़्यादा जाहिल हों। वहां बैठ कर दुनिया से कुछ नफ़रत दिखाए और रियाज़त करे। फिर देखो कि वो जल्द पीर बन जाता है कि नहीं। हिन्दू और मुसलमान फ़क़ीरों ने रियाज़त ही दिखलाकर जाहिलों को अपनी तरफ़ खींचा है। लेकिन दानिशमंद लोग सिर्फ रियाज़त पर ही फ़रेफ़्ता नहीं होते। देखो रसूल क्या फ़रमाता है (कुलुस्सियो 2:23) ये चीज़ें तो ईजाद की हुई इबादत और ख़ाकसारी और बदनी रियाज़त और तन की इज़्ज़त ना करना कि इस की ख़्वाहिशें पूरी हों हिक्मत की सूरत रखती है।

सूरत बग़ैर जान के मुर्दा है। दानिशमंद जान की तलाश करता है, ना कि सिर्फ सूरत की। मगर जाहिल सिर्फ़ सूरत पर फ़रेफ़्ता होते हैं। फिर रसूल बतलाता है, कि रियाज़त की दो किस्में हैं, एक बदनी रियाज़त है और दूसरी दीनदारी की रियाज़त (1 तिमुत्तियुस 4:7-8) बेहूदा और बूढ़ियों की कहानीयों से मुँह मोड़ और दीनदारी में रियाज़त कर कि बेदीनी रियाज़त का फ़ायदा थोड़ा है। पर दीनदारी सब बातों के वास्ते फ़ाइदामंद है। कि अब की और आइंदा की ज़िंदगी का वाअदा उसी के लिए है। वो रियाज़त जो दीनदारी में है। इस का इलाक़ा अमान-ए-बरहक़ और तमाम सहीह

अक़ाइद और हक़ीक़ी नेक-आमाल और हमीदा अख़्लाक़ है और बदनी रियाज़त का इलाक़ा उन जिस्मानी तक्लीफ़ात की बर्दाश्त से है। जो उमूर अजादी हैं इन्सानी तज्वीज़ से हैं। सूफ़िया में और हिंदू फ़क़ीरों में बदनी रियाज़त बहुत होती है। लेकिन दीनदारी की रियाज़त सिर्फ उन हक़ीक़ी मसीहीयों में है जो ख़ुदा के कलाम पर चलने की कोशिश में रहते हैं। उनको दुनिया के दर्मियान सब मुआमलात में रह कर बड़ी नफ़्सकुशी करनी पड़ती है। और यही रियाज़त मुफ़ीद व आफ़रीन के है।

(5) और ये जो तर्क-ए-दुनिया का ज़िक्र वो करते हैं। ये मज़्मून भी सख़्त गौरतलब है। तर्क-ए-दुनिया की दो सूरतों हैं। अव्वल दुनिया की मुहब्बत और ख़िदमत दिलों में ऐसी ग़ालिब ना रहे कि ख़ुदा की मुहब्बत और ख़िदमत में क़सूर आ जाए। दुनिया के सब मुनासिब कारोबार और अहले रिश्ता के हुक़ूक़ ख़ुदा के हुक्म से और अक़्ल के हुक्म से फ़ित्रत के मुवाफ़िक़ पूरे करना इन्सान का फ़र्ज़ है। और ऐसा फ़र्ज़ है कि इस में क़सूर आए तो आदमी ख़ुदा का गुनाहगार होता है। और वो उस में ऐसा धसे कि ख़ुदा की मुहब्बत और ख़िदमत में क़सूर आए तो वो मलऊन होता है। उस को ज़रूर है कि वो हुक़ूक़ अल्लाह और हुक़ूक़-उल-ईबाद दोनों को पूरा करे। पस जब हम तर्क-ए-दुनिया का ज़िक्र सुनते हैं तो यही मतलब हमारे ख़यालों में आता है। कि दुनिया की मुहब्बत ख़ुदा की मुहब्बत पर ग़ालिब ना आ जाए। जैसे सब दुनियादारों की कैफ़ीयत है। ये हम हरगिज़ नहीं समझते कि दुनिया के सब कारोबार को छोड़कर हमें जंगलों में जाना ज़रूर है। ये दुनिया को तर्क करने की दूसरी क़िस्म है। लेकिन इस क़िस्म में हुक़ूक़-उल-ईबाद मुताल्लिक़ा फ़ौत होते हैं। और ख़ुदा की और अक़्ल की और फ़ित्रत की ना-फ़रमानी होती है। फिर हमारी समझ में नहीं आता कि हम ऐसे नाफ़रमान हो कर क्योंकर ख़ुदा से बरकत पाएँगे? क्या वो अपने नाफ़रमानों को अपना दोस्त समझेगा?

सूफ़िया ने ये समझ लिया है कि दुनिया से मुतल्लिक़न भागना ख़ुदा-परस्ती है। हम समझते हैं कि ये सूरत गुनाह की है। मुख़ालिफ़ों के दर्मियान खड़ा रह कर और जंग करके फ़त्हयाब होना बहादुरी है या मुख़ालिफ़ों के डर से दूर भाग जाना और कहना कि मैं दुश्मनों से जान बचा कर भाग आया हूँ, इसलिए मैं बहादुर हूँ? अब फ़रमाए कि बादशाह कौन से सिपाही से कहेगा कि तू बहादुर है तेरे लिए इनाम है? पहला शख़्स मसीही है और दूसरा सूफ़ी है।

18 फ़स्ल इल्म सीना (سینہ) और सफ़ीना (سفینہ) के बयान में

लफ़्ज़ सफ़ीना (سفینہ) के मअनी हैं बयाज़ अशआर (بیاض اشعار) यानी शेअरों (شعروں) की किताब और कश्ती को भी सफ़ीना कहते हैं। इल्म-ए-सफ़ीना बाइस्तलाह सूफ़िया वो इल्म है जो कुतुब में मर्क़ूम है। और उस से मुहम्मदी शराअ की किताबों पर इशारा होता है।

इल्म सीना इनके गुमान में वो बातें हैं जो मुहम्मद साहब से और सूफ़ी बुज़ुर्गों से सीना बह सीना यानी खुफ़ीया ताअलीम से उनमें आई हैं। इन बातों को वो छुपा कर रखते हैं। और ख़ास मुरीदों को सिखलाते हैं। और इल्म सफ़ीना की निस्बत इस इल्म सीना की बड़ी इज़्ज़त करते हैं। गोया असल माअर्फ़त यही है। मुराद ये है कि मुहम्मद साहब की आम और अलानिया ताअलीम तो क़ुरआन व हदीस है और खुफ़ीया ताअलीम सूफ़िया के पास है।

नतीजा ये हुआ कि हज़रत ने दो तरह की ताअलीम दी है अलानिया और खुफ़ीया। अलानिया में कुछ और है खुफ़ीया में कुछ और है। और ये बात अदम सफ़ाई और फ़साद की है दुनियावी मिज़ाज लोग जिनके दिलों में और कामों में सफ़ाई नहीं है, वो ऐसे काम करते हैं। कि ख़ुदा के पैग़म्बरों ने ऐसे काम नहीं किए। जो कुछ उन्होंने ख़ुदा से पाया जहां के सामने अलानिया रख दिया ताकि अहले दुनिया इन बातों को परखें। मसीह ख़ुदावंद ने साफ़ फ़रमाया कि (युहन्ना 18:20) मैंने आश्कारा आलम से बातें कीं। मैंने हमेशा इबादत ख़ानों और हैकल में जहां सब यहूदी जमा होते हैं ताअलीम दी और खुफ़ीया कुछ नहीं कहा।

देखो ये कैसी सफ़ाई की बात है अब कोई मसीही ये नहीं कह सकता है मुझे कुछ खुफ़ीया ताअलीम मसीह से पहुंची है। फिर ये क्या बात है कि मुहम्मद साहब से शरई ताअलीम अलानिया और तसव्वुफ़ी ताअलीम खुफ़ीया होती है? इस पर लुत्फ़ की बात ये है कि जो कुछ सूफ़िया के पास खुफ़ीया था वो सब ज़ाहिर हो गया और उनकी किताबों में मर्क़ूम है। पस वो खुफ़ीया अब खुफ़ीया ना रहा और ज़ाहिर हो गया। कि इन में बहुत कुछ ताअलीम अलानिया के ख़िलाफ़ है। और दानिशमंद के सामने ना उस अलानिया का एतबार रहा ना इस खुफ़ीया का बल्कि मुअल्लिम की चालाकी साबित हुई और नक़्क़ादों को मालूम हो गया कि ना अलानिया में ज़िंदगी है और ना खुफ़ीया में।

इस वक़्त शायद कोई मुहम्मदी साहब कहे कि हज़रत मुहम्मद साहब ने खुफ़ीया कुछ नहीं सिखलाया है। सूफ़ी लोग हज़रत पर तोहमत लगाते हैं जो उनकी खुफ़ीया ताअलीम के क़ाइल हैं। इसलिए मुझे ये बतलाना भी वाजिब है कि हज़रत में कुछ खुफ़ीया ताअलीम की आदत तो थी ख़िलाफ़त का इंतिज़ाम हज़रत अली के साथ तो ख़फ़ीतन कुछ और किया और अबू बक्र के साथ कुछ और किया और इस खुफ़ीया बंदो बस्त से किस क़द्र फ़साद और ख़ून रेज़ि और उम्मत में तफ़र्रक़ा पड़ा अगर आँहज़रत इस ख़िलाफ़त का इंतिज़ाम साफ़ साफ़ क़ुरआन में कह देते तो काहे को वो फ़साद होते? और क्यों ये सुन्नी शिआ बनते? देखो मसीह ने पतरस के हक़ में साफ़ साफ़ कह दिया था। (मत्ती 16:18 से 20, युहन्ना 21:15 से 17 और 23) कि तू मेरे पीछे हौले साफ़ ज़ाहिर है कि उस वक़्त वो कलीसिया के इंतिज़ाम के लिए मुक़र्रर हो गया और सब हवारी ख़ामोशी से उस के पीछे हो लिए हैं। मुहम्मद साहब ने ऐसा नहीं किया। बल्कि उस को कुछ खुफ़ीया कह कर फ़साद बरपा कर दिया मेरी इस से सिर्फ ये ग़रज़ है कि खुफ़ीया ताअलीम की आदत तो थी क्या ताज्जुब है कि तसव्वुफ़ी ख़यालात की जड़ खुफ़ीया सिखलाई हो।

19 फ़स्ल बैअत यानी पीरी मुरीदी के बयान में

बैअत की असल ये है कि 10 हिज्री में जब मुहम्मद साहब मक्का में आए और बुत-परस्त क़ुरैशियों का ग़लबा था और ये ग़लत बात मशहूर हो गई थी कि उस्मान क़ुरैश के हाथ से मारे गए हैं। तो हज़रत ने हम-राही मुसलमानों को जमा करके इस इरादे से कि वो बहा विराना लड़ेंगे। एक एक के हाथ पर हाथ रखकर गोया कसम ली थी कि वो बेवफ़ाई ना करेंगे इस का ज़िक्र सुरह फ़त्ह के पहले रुकूअ में है। पीछे ये बैअत का दस्तूर मुसलमानों में जारी हो गया। उलमा मुहम्मदिया और अहकाम उस को अमल में लाने लगे। सूफ़िया ने इस दस्तूर को अपनी तरफ़ खींच लिया और पीरी मुरीदी में जारी किया ये अहद बंदी का दस्तूर है जो दुनिया के अक़्वाम में और शक्लों में चला आता है।

बैअत लफ़्ज़ बैअ से है फ़रोख़्त करना गोया वो ख़ुद को पीर के हाथों फ़रोख़्त करते हैं। कि बिल्कुल तेरी ताबेदारी करेंगे। हम मसीही भी मसीह के हाथों फ़रोख़्त हुए हैं। इस क़ीमत पर जो उसने हमारी जानों के लिए अपने कफ़्फ़ारे में दी है। लेकिन सूफ़ी लोग पीरों के हाथों मुफ़्त फ़रोख़्त होते हैं। और उन्होंने उनके लिए कुछ नहीं

किया। सिर्फ इस उम्मीद पर कि कोई खुफ़ीया ताअलीम तसव्वुफ़ की शायद कभी बतलाएंगे।

पीर या शेख़ बूढ़ढा आदमी है जो पच्चास बरस से गुज़र गया हो इस्तिलाह सूफ़िया में पीर वो आदमी है जो शरीअत, तरीक़त, हक़ीक़त की बातों में पूरा माहिर हो और जानों के अमराज़ से वाक़िफ़ और शिफ़ा बख़्शने पर क़ादिर हो। इस इस्तिलाह के मुवाफ़िक़ सूफ़िया में एक पीर भी ना मिलेगा तो यही वो फ़र्ज़ करते हैं कि फ़ुलां शख़्स ऐसा है। ऐसा शख़्स तो सिर्फ एक है यानी यसूअ मसीह जो ख़ुदा की मर्ज़ी से कामिल वाक़िफ़ है और हमारी जानों के अमराज़ से ख़बरदार है और शिफ़ा बख़्शने पर है।

क़ुतुब बख़्तयार अदशी काकी फ़रमाते हैं कि पीर वो है कि जो अपनी बातिनी निगाह की क़ुव्वत से दुनिया वग़ैरा का ज़ंगार अपने मुरीद के दिल पर से दूर कर दे ताकि कुछ क़ुदरत वग़ैरा ना रहे।

सय्यद मुहम्मद सैनी गेसू दराज़ कहते हैं कि पीर वो है जिसको कशफ़ क़ुबूर व कशफ़ अर्वाह हुआ करता हो। और जिसकी मुलाक़ात अर्वाह अम्बिया से हुआ करती हो और अफ़्आल सिफ़ात इलाहियह की तजल्ली और ज़ात बारी तआला ज़हूर हासिल हो ये सब बातें सिर्फ़ मसीह में हैं और किसी में नहीं मजमा-उल-सलातक में लिखा है कि पीर वही है जो शराअ पर मुस्तकिम हो। और कुछ हो ना हो शराअ ईलाही पर कामिल तौर पर चलने वाला और इस को मुकम्मल करने वाला सिर्फ़ यसूअ मसीह है और कोई नहीं।

इसलिए हम मसीही किसी पीर मुर्शिद की तलाश में हरगिज़ नहीं रहते हम सब का एक ही पीर मुर्शिद है यानी यसूअ मसीह जो हर जगह हाज़िर व नाज़िर है। और क़ादिर ख़ुदा और कामिल इन्सान है। हमारे दर्मियान बाअज़ ऐसे बुज़ुर्ग मसीही भी हैं जो यक़ीनन ख़ुदा के दोस्त हैं। और हर वक़्त ख़ुदा की हुज़ूरी में रहते हैं और बाबरकत हैं। हम मसीही उनकी इज़्ज़त करते और उन्हें बुज़ुर्ग समझते हैं और उनके नेक नमूने और चाल चलन में और इबादात में देखते और सीखते हैं। और उनकी तालिमात से फ़ायदा उठाते और उन को अपने लिए ख़ुदा की बड़ी बख़्शिश समझते हैं। लेकिन हम किसी को अपना पीर व मुर्शिद नहीं बनाते वो और हम सब पीर भाई

हैं क्योंकि अपनी रूहों को सिवाए मसीह ख़ुदावंद के किसी और आदमी के हाथ में सौंपना अक़लन व नक़लन नाजायज़ है।

फिर सूफ़ी कहते हैं कि मुरीद को पीर की निस्बत एतिक़ाद में मज़बूत होना और इताअत बिला हुज्जत करना चाहिए, वर्ना कामयाब ना होगा। चुनान्चे वो कहते कि पीर मन ख़स अस्त व एतिक़ाद व मन बस अस्त (پیر من خس است واعتقاد و من بس است) क़ौल तजुर्बा और अक़्ल और कलाम, अल्लाह के ख़िलाफ़ है। अगर ख़ूबी सिर्फ़ एतिक़ाद में है तो ख़ूबी हम में हुई ना कि पीर में क्योंकि एतिक़ाद हमारा फेअल है। हम ख़ूब जानते हैं कि ख़ूबी सिर्फ़ ख़ुदा में है। ना किसी आदमी में ना किसी आदमी के फेअल में। हाँ एतिक़ाद गोया एक हाथ है जो भीक मांगने के लिए ख़ुदा के आगे फैलाया जाता है। अगर हम आग की निस्बत एतिक़ाद करें कि वो सर्द है। या साँप की मानिंद कि कि वो गोगा पीर है। तो यहां से क्या निकलता है जलना। और बुत परस्तों ने बुतों पर एतिक़ाद करके क्या निकाला ये कि ख़ुद पत्थर हो गए। पस एतिक़ाद ने उनके लिए वही चीज़ निकाली जो वहां थी सूफ़िया ने मुर्दों और क़ब्रों पर ईमान बाँधा वहां से किया पाया? ये कि दिलों में ज़्यादा मुर्दगी छा गई तमीज़ें सुन हो गईं।

हाँ अगर वो ज़िंदा ख़ुदा पर और उस के कलाम पर भरोसा या एतिक़ाद करते तो ज़िंदगी और रोशनी रूहों में आ जाती। जैसे हक़ीक़ी मसीहीयों के दिलों में आ गई है। क्योंकि जिस चीज़ पर दिल टिकता है उसी चीज़ का असर दिल में होता है। और वो जो कहते हैं कि पीर की इताअत हर अम्र में बिला हुज्जत करना चाहिए और ये शेअर हैं कि :-

بمے سجادہ رنگین کن گرت پیر مغان گوید
کہ سالک بے خبر بنود زراور سم منزلہا

बमे सज्जादा रंगीन कुन गर्त पीर मुग़ाँ गवेद
कि सालिक बे-ख़बर बिनोद ज़राव रस्म मंज़िलहा

इस बारे में हम यूं कहते हैं कि सिर्फ पैग़म्बरों की इताअत बिला-हुज्जत फ़र्ज़ है क्योंकि वो ख़ुदा की तरफ़ से हादी और मुअल्लिम हैं। सिवाए पैग़म्बरों के और किसी की इताअत बिला समझे नाजायज़ है। किसी पीर फ़क़ीर और पण्डित और मौलवी और किसी पादरी का ये मन्सब नहीं है कि उस की इताअत बिला-हुज्जत की जाये जब वो कुछ कहेगा तो हम सोचेंगे कि ख़ुदा के कलाम के मुवाफ़िक़ कहता है या नहीं अगर

नहीं तो उस की हरगिज़ ना मानेंगे क्योंकि हम ख़ुदा के फ़रमांबर्दार हैं ना कि किसी आदमी के और हमने ख़ुदा से बैअत की है, ना कि किसी पीर से।

20 फ़स्ल तसव्वुर शेख़ के बयान में

सब सूफ़ी इस बात के क़ाइल हैं कि तसव्वुर-ए-शेख़ इब्तिदा में मुरीद के लिए ज़रूर है यानी ख़्याल के वसीले से पीर जी की सूरत अपने दिल में क़ायम करना और ऐसा क़ायम करना कि गोया वही सूरत उस का माबूद है। और ये शेअर सुनाते हैं कि :-

چون دیدہ عقل آمد احول　　معبود تو پیر تست اول

चोन दीदा अक़्ल आमद अहवलमाबूद तो तस्त अव्वल

हज़रत मुजद्दिद साहब अपनी जिल्द सानी के 31 मकतूब में और हज़रत शाह वली उल्लाह मुहद्दिस देहलवी अपनी किताब क़ौल जमील में इस की ताअलीम देते हैं और किताब रशहात की फ़स्ल अव्वल मक़्सद दुवम रशहा चहारुम में एक आयत क़ुरआनी यानी सुरह तौबा की 119 आयत (وَكُونُوا مَعَ الصَّادِقِينَ) की तफ़्सीर ख़्वाजा अहरार से यूँ मन्क़ूल है कि सादिक़ीन के साथ होना दो मअनी रखता है।

अव्वल मुजालिस्त जिस्मानी, दुवम बातिनी तसव्वुरात पस देखो कि ये सूफ़ी क़ुरआन के मुतालिब को किस ज़ुल्म और ज़बरदस्ती से अपने मतलब पर खींचते हैं बिल्कुल नेचरियों की तफ़्सीरों की मानिंद ये तफ़्सीर है। अक़्ल इस तफ़्सीर को क़ुबूल नहीं कर सकती। मैं पूछता हूँ कि इस ताअलीम में और बुत-परस्ती में क्या फ़र्क़ है? हज़रत मिर्ज़ा मज़हर जान जानाँ से किताब मामूलात मज़हर में ये मन्क़ूल है कि नवाब मुकर्रम ख़ान ने अपने पीर ख़्वाजा मुहम्मद मासूम साहब की ख़िदमत में ख़त लिखा और कहा कि आपकी मुहब्बत ख़ुदा व रसूल की मुहब्बत पर ग़ालिब आ गई और मैं इस से शर्मिंदा हूँ। पीर साहब ने जवाब दिया कि पीर की मुहब्बत ऐन ख़ुदा व व रसूल की मुहब्बत है। और पीर के कमालात मुरीद में आ जाते हैं। ये तो सच्च है कि जब पीर माबूद हो गया तो जो कुछ पीर में है इस में तासीर करेगा। जैसे बुत-परस्ती से संगदिल्ली और ख़ुदा-परस्ती से ज़िंदगी हासिल होती है। लेकिन पीर साहब में क्या है सिर्फ हमा औसत (ہمہ اوست) का ख़्याल है कि वैसे ही ये हो जाऐंगे। हम जानते हैं ये सब बिद्दती लोग ख़ुदा और इन्सान के दर्मियान बाअज़ जिस्मानी वसाइल क़ायम करते हैं। लेकिन ख़ुदा के कलाम में साफ़ लिखा है कि ख़ुदा ऐसे परस्तारों को चाहता है कि जो रूह और रास्ती से परस्तिश करते हैं। मगर ये तसव्वुर शेख़ की वही

बात है कि है जैसे बुत-परस्त लोग बुत को अपने और हक़ीक़ी ख़ुदा के दरम्यान क़ायम करते हैं।

21 फ़स्ल नफ़ी इस्बात के बयान में

दूसरी ताअलीम जो पीर लोग मुरीद को करते हैं नफ़ी इस्बात (सबूत का इन्कार) का ज़िक्र है यानी ला-इलाहा इल-लल्लाह का ज़िक्र ला-इलाहह में नफ़ी है और इल-लल्लाह में इस्बात (सबूत) है।

तरीक़ा इस का यूं बतलाते हैं कि आदमी वुज़ू करके रू ब काबा चार ज़ानू या दो ज़ानू बैठे और आँखें बंद करके सनोबरी क़ल्ब की तरफ़ मुतवज्जा हो और सांस को नाफ़ के नीचे बंद करके लफ़्ज़ ला (لا) को नाफ़ से दिमाग़ की तरफ़ सांस में खींचे और वहां से लफ़्ज़ इला (الہ) को दहने कूल्हे की तरफ़ लाए फिर यहां से लफ़्ज़ इल्लल्लाह (الہ اللہ) को सांस के ज़ोर के साथ दिल के गोश्त पर ऐसा ज़ोर से मारे कि सारे बदन में सदमा पहुंचे। अगर आवाज़ हूँ हूँ की निकले तो ज़िक्र ज़हरी जो कादरियों का दस्तूर है हो गया, और जो आवाज़ मुतलक़ ना निकले तो ज़िक्र ख़फ़ी नक़्शबंदिया का तौर है, और ये ज़र्ब कहलाती है। इसी तरह जिस क़द्र चाहे दिल पर लगाए।

मगर ये ज़रूर है कि लफ़्ज़ ला-इलाह (لا الہ) में कुल महदसात की नफ़ी का और लफ़्ज़ इल्लल्लाह (الہ اللہ) में इस्बात ज़ात-ए-हक़ का ख़्याल पुख़्ता रहे यानी जहां की सब चीज़ें नेस्त हैं सिर्फ़ ख़ुदा मौजूद है।

सूफ़ी लोग इब्तिदा में इस ज़िक्र की ख़ूब मश्क़ करते हैं और ख़ास वक़्त पर इखट्ठे हो कर अक्सर ऐसा काम करते हैं और हर वक़्त चलते फिरते सांस में ये ज़िक्र चला जाता है। और इस में मुश्ताक़ हो जाते हैं और उम्मीद रखते हैं कि दिल में इस से कुछ नूर चमकेगा लेकिन कभी कुछ नहीं चमकता।

ये हमा औसत (ہمہ اوست) के ख़्याल की इब्तिदाई मश्क़ है। और ये मुहम्मद साहब की ताअलीम नहीं है। बल्कि मुहम्मद साहब की मुराद के ख़िलाफ़ है फ़िक़्रह ला इलाहा इल्लल्लाह में मुहम्मद साहब ने ग़ैर माबूदों की नफ़ी करके बारी तआला के वजूद-ए-हक़ का इस्बात किया है। जो एक दफ़ाअ समझ लेना काफ़ी है। सूफ़िया ने ज़्यादती करके लाइलाह में कुल महदसात में नफ़ी क़रार दी है। पस ग़ैर माबूदों की

नफ़ी को कुल महदसात की नफ़ी क़रार देना मुहम्मद साहब की मुराद के ख़िलाफ़ है, और अक़्ल के भी ख़िलाफ़ है बल्कि कुफ़्र है।

और इस से फ़ायदा क्या होता है? कस्रत ज़रबात दिल कमज़ोर और नातवां हो जाता है। बल्कि बाज़-औक़ात दिली बीमारीयां ला-इलाज पैदा हो जाती हैं। और इस से जुनून भी होता है। जिसको वो लोग जज़्बा ईलाही समझते हैं। ये जज़्बा ईलाही नहीं है और ना इस में कलिमे की कुछ तासीर है। ये तो सिर्फ सांस के रगड़ों की तासीर है जो हरारत पैदा करती है। अगर कलिमे को दर्मियान से निकाल कर बेमाअनी जल्द जल्द बज़ोर सांस लें तो भी वही कैफ़ीयत पैदा होती है क्योंकि ये बर्क़ी हरारत है जो सब जिस्मों में मौजूद है और रगड़ से महसूस होती है।

और इस से वज्द भी आता है जब कि सूफ़ी साहब किसी क़ब्र पर बैठ कर अंदर ही अंदर ज़रबात खुफ़ीया की हरारत पैदा करते और ऊपर से ढोलक की तअन और राग का लुत्फ़ और कव्वालों की टपाटप तालियाँ तासीर करती हैं तब वो कूदने लगते हैं और लोग समझते हैं कि उनके दिल में कुछ ज़ाहिर हुआ है। पस ये नफ़ी इस्बात कुछ पसंद के लायक़ चीज़ नहीं है। हम सिर्फ ईमान की आँख से सच्चे ख़ुदा की तरफ़ देखते हैं और इस से हमारे दिलों में ईलाही मुहब्बत जोश मारती है। तब हम सब नेक कामों के लिए मुस्तइद होते हैं ना कि कूदने के लिए।

22 फ़स्ल हब्स (حبس) के बयान में

तीसरी ताअलीम सूफ़िया की हब्स है। जब वो देखते हैं नफ़ी इस्बात के ज़िक्र से दिमाग़ में ख़लल नहीं आया तब हब्स यानी सांस घोटने की ताअलीम देते हैं।

तरीक़ा इस का ये है कि ख़ल्वत में अकेला दो ज़ानूँ में बैठे और दोनों हाथों के दोनों अंगूठों से कानों के दोनों सुराख़ बंद करके और अंगूठों के पास वाली दोनों उंगलीयों से दोनों आँखें बंद करे और दरमयानी दो उंगलीयों से दोनों सुराख़ नाक के दबाकर बंद करे फिर दो उंगलीयों से ऊपर के होंट और दो से नीचे के होंट ख़ूब दबाकर बंद करे एसा कि सांस लेने की जगह कहीं ना रहे उस वक़्त ख़्याल में गद्दी की तरफ़ मुतवज्जा हो क्योंकि रूह उनके गुमान में वहां रहती है। और अब जो हवा सांस के अंदर बंद हो गई है इस से ज़िक्र नफ़ी इस्बात का दिल में जारी करे जब तंग हो के जान अंदर से घबराए तो हाथ हटा कर सांस लेना चाहिए फिर इसी तरह बंद कर लेना। हर-रोज़ ऐसा करने से सांस घोटने की आदत बढ़ती जाएगी। यहां तक कि देर तक सांस घोंटा करेगा। ये ऐसी मशक़्क़त है कि अय्याम-ए-सुरमा में अर्क़ आ

जाता है और रगों और पट्ठों में तशंनुज और अज़ाए रईसा के फ़ित्री काम में ख़लल आता है और इस ख़लल को वो इलाही जज़्बा समझते हैं। ये ताअलीम हिंद व जोगियों से सूफ़ियों ने उड़ाई है और मुहम्मदी का कलिमा का ज़िक्र इस में अपनी तरफ़ से मिला दिया है। और जो कुछ इस से बदन पर तासीर होती है वह उस को कलिमा की तासीर समझते हैं हालाँकि वो मशक़्क़त की तासीर है और दीवानगी की जिस्मानी तासीर है वो फ़ज़्ले इलाही का असर नहीं है। बाअज़ मुहम्मदी इस तरीक़ा हब्स को बिद्दत कहते हैं लेकिन सूफ़ी नहीं मानते क्योंकि उनका इस से बड़ा मतलब निकलता है मुरीद की अक़्ल मारकर जल्द उसे वली बनाते हैं। अफ़्सोस ये है कि ये लोग ख़ुदा के कलाम के पास नहीं आते ना ख़ुदा की राहों को दर्याफ़्त करते हैं। फ़क़ीरों के बहकाए हुए इधर उधर बेफ़ाइदा मशक़्क़त खेंचते फिरते हैं और दिमाग़ी ख़लल हासिल करके समझते हैं कि हम ख़ुदा से मिलेंगे। ख़ुदा क्या है? और इस से क्योंकर मिल सकते हैं? और इस से मिल कर इस दुनिया में हमें क्या हासिल होता है? और कैसी उम्मीद आइन्दा के लिए हो जाती है? इन बातों को उन्हों ने अब तक दर्याफ़्त नहीं किया।

याद रखो कि सांस की रगड़ों से और दम घोटने से और किसी जिस्मानी ज़ोर से ख़ुदा नहीं मिलता। पाक और सहीह ईमान की क़ल्बी तवज्जा से वो मिलता है, या इंजील का तरीक़ा है।

23 फ़स्ल रोज़ों और शब दारीयों के बयान में

रोज़े और शब दारियां बजा-ए-ख़ुद क़ुर्बत-ए-इलाही के लिए मुफ़ीद और ख़ास क़िस्म की इबादात तो हैं और इस से फ़ायदा तो होता है। उस आदमी को जो फ़ील-हक़ीक़त ख़ुदा का तालिब है और सच्चे ईमान से ख़ुदा के हुज़ूर में चलता फिरता है। रोज़ों और शब दारीयों के साथ जब सच्ची तलब और सच्चा ईमान ना हो तो उनसे सिर्फ जिस्मानी दुख हासिल होता है। बाअज़ सूफ़ी साईम-उल-दहर बनते हैं यानी साल भर बराबर ख़ुफ़ीया रोज़ा रखते हैं मुहम्मदी फ़िक़्ह के इमाम कहते हैं कि ये काम मना है मुहम्मद साहब ने साईम-उल-दहर होने से हदीस में मना किया है। सूफ़ी कहते हैं कि हम ईदें और तशरीक़ में रोज़ा नहीं रखते इसलिए हम साईम-उल-दहर नहीं हैं। और वो शब दारियां भी करते हैं और बाअज़ उनमें ऐसे हैं कि जो ख़ुफ़ियातन कि कोई ना जाने सारी सारी रात जागते कभी आस्मान को तकते कभी टहलते कभी दीवार से

कमर टिका कर बैठ जाते कभी कभी सारी रात किसी क़ब्र पर बैठ कर इस मुर्दा ख़ाक शूदा की मिन्नत करते हैं कि हमें भी कुछ नेअमत दे। अगर हक़ीक़ी रोज़े और हक़ीक़ी शब दारियां होतीं तो ज़रूर तक़र्रुब इलाही होता मगर वो तो कुछ दीवानगी की हरकतें दिखाते हैं। इसलिए उनकी शब दारीयों में सिवाए नींद की बर्बादी के सबब मिज़ाज में ख़लल आता है सुबह को आँखें सुर्ख़ नज़र आती ही। दिल कहता है कि हमने रात-भर ख़ुदा की इबादत की है। सुब्हान-अल्लाह हम क्या ख़ूब आदमी हैं अब हम कोई दिन में वली होते हैं और जब हम साहब-ए-तासीर हो जाऐंगे। फ़ुलां फ़ुलां मुख़ालिफ़ का बद्दुआ करके सत्यानास कर देंगे। हाय अफ़्सोस ये शैतान जो एक बदरुह है। इन्सान के कान में कैसा फुस्स फुसाता रहता है और नेक आदमीयों के सब आमाल हसना को जो वो गिर पढ़के कुछ करते भी हैं ये बर्बाद कर देता है। रिया और फ़ख़्र और नापाक उम्मीदें और तरह तरह के बद मंसूबे लेकर हर आबिद ज़ाहिद बल्कि हक़ीक़ी ख़ुदा-परस्त के पास भी जाता है। और इस की मिट्टी ख़राब करता है वह जिसका भरोसा आमाल पर है। हमेशा शर्मसार और नाउम्मीद रहता है। और फ़िलवाक़े आख़िर को शर्मिंदा होगा अगर ख़ुदा सादिक़ुल-क़ौल है।

मगर वो मसीही जिसका भरोसा सिर्फ़ मसीह पर है आमाल हसना की बर्बादी अपनी तरफ़ से और शैतान की तरफ़ से जब देखता है और जब बड़ा ज़ोर मारकर नेकी करता है और देखता है कि इस में भी नुक़्सान रहा तो कहता है कि सच्च है कि मैं आमाल से नहीं बच सकता मुझे यसूअ मसीह की बड़ी ज़रूरत है।

हासिल कलाम ये है रोज़े और शब दारियां वग़ैरा इबादात अगरचे ज़माना गुज़श्ता के बुज़ुर्गों के अत्वार हैं और मुफ़ीद भी हैं। मगर बातिल ख़यालात के साथ उनसे क्या हो सकता है? सिर्फ ये कि रोज़ों से क़ुव्वत बदनी में ख़लल आए और मादा ज़ईफ़ हो और शब दारीयों की कस्रत से दिमाग़ में ख़लल और पुट्ठों में हलचल हो और उस के ऊपर सांस की रगड़ों से दिल ज़ईफ़ हो जाये और हब्स की तासीर से मिज़ाज बदल जाये और यूं ये सारी हरकतें मिलकर उसे दीवाना सा बना दें और वो वली समझा जाये।

इन हरकतों से बाअज़ बशिद्दत दीवाने हो जाते हैं। दो तीन शरीफ़ ज़ादों के नाम मुझे मालूम हैं जोकि इन्हीं हरकतों से पागल हो गए। और वो मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) समझे जाते हैं। बाअज़ में क़दरे दीवानगी आती है उनको सालिक मज्ज़ूब (मस्त, मलंग) कहते हैं।

पस इन बातों के सिवा जिनका ऊपर ज़िक्र हुआ सूफ़िया के पास और कुछ नहीं है सिर्फ यही इनकी उसूली बातें हैं। अब नाज़रीन इन्साफ़ से कहें कि ये उनके तरीक़े ख़ुदा से मिलने के हैं या दीवानगी से मुलाक़ात करने के है?

24 फ़स्ल चिल्लाकशी के बयान में

सूफ़ी लोग कभी कभी चिल्लाकशी भी करते हैं यानी चालीस दिन तक बज़ाहिर दुनिया से अलग हो कर किसी अपने खासतौर के साथ कोई वज़ीफ़ा पढ़ते हैं और समझते हैं कि इस वज़ीफ़ा की ज़कात देकर उसे अपने क़ाबू में लाएं गए।

और इस चिल्लाकशी के लिए मूसा का चालीस दिन तक पहाड़ पर रहना और ख़ुदावंद मसीह का दिन रात का रोज़ा और जंगल में रहना और मुहम्मद साहब का ग़ार-ए-हिरा में रहना बतौर सनद के पेश करते हैं।

मैं इस बारे में यूं कहता हूँ कि अलबत्ता कभी कभी अकेला हो कर ख़ुदा से रिफ़ाक़त करना और दुआ के वसीले से हम-कलाम होना कलाम-उल्लाह के मुताबिक़ बुज़ुर्गों का शेवा हुआ है लेकिन इस पाक असल को पकड़ कर सूफ़िया के तौर में लाना और क़सीदा गोसिया या हिज़्ब-उल-बहर वग़ैरा की फ़र्ज़ी ज़कात में वक़्त बर्बाद करना कलाम-उल्लाह के मुनासिब नहीं है और इस से रुहानी फ़ायदा कुछ नहीं होता।

जिस क़द्र बुज़ुर्ग सूफ़ी मेरी इस तहरीर को पढ़ेंगे मैं उनसे यूं अर्ज़ करता हूँ कि आप लोगों ने ज़रूर कुछ चिल्ले भी किए होंगे। ख़ुदा के सामने अपनी अपनी तमीज़ों को जवाब दो कि तुमने चिल्लों के वसीले से क्या पाया है? सिर्फ ये कि मुरीदों ने और आस-पास के जाहिल लोगों ने आपको बुज़ुर्ग पीर समझा और आपकी दुनियावी दुकानदारी की आमद गरम हो गई। बाअज़ ख़ानक़ाहों की तरफ़ देखो कि वो सज्जादा नशीन जिन्हें तुम जानते हो कि ज़िनाकार और शराब-ख़ौर और रिश्वत-दोस्त और पूरे दुनियादार हैं। जब कि उनके दादा साहब का उर्स नज़्दीक आता है चिल्ला करते हैं। किसी मकान में अलग हो बैठते हैं। सिर्फ हमराज़ वहां आते-जाते हैं। तस्बीह हाथ में और हुक़्क़ा मुंह में रहता है। और दिल में ये ख़्याल रहता है कि देखें इस उर्स में कितनी आमद और ख़र्च क्या होगा। फिर उर्स के दिन चिल्ले से बाहर आते हैं और अवामुन्नास (लोग) पीर पूजने को बाहर खड़े रहते हैं और बड़ी धूम मचती है कि हज़रत पीर जी साहब चिल्ले में से बाहर आते हैं। फ़ौरन उनको हाथ लगा कर आँखों को लगाना चाहिए वो बरकतों से भरे हुए बाहर हैं।

और बाअज़ वो सूफ़ी हैं जो ऐसे नहीं, मगर मिस्ल हिंदू जोगियों के जंगलों में चले और रियाज़तें करते हैं। क्या तुम्हारा दिली इन्साफ़ कहता है कि उनके ये अफ़्आल और ख़यालात पैग़म्बरों के कामों के बराबर हैं? सिर्फ लफ़्ज़ चिल्ला तो वहां से लिया और जो कुछ इस में होता है वह बुत परस्तों से लेकर इस में दाख़िल किया।

फिर कहते कि जैसे पैग़म्बरों ने किया हम वैसे करते हैं। क्या तुम्हारे दिलों में ख़ुदा का ख़ौफ़ नहीं है? ये तो वही बात हुई कि जिस्म इन्सान और रूह शैतान की।

अब मैं तुम्हें एक पाक चिल्ले का तरीक़ा बतलाता हूँ जिसे सच्चे बंदगान-ए-ख़ुदा ने भी किया है। अगर उस को अमल में लाओ तो देखना कि कैसी बरकत अल्लाह से पाओगे। चालीस रोज़ तक हर-रोज़ एक आधा घंटा पाक नीयत से खुफ़ीयतन ख़ल्वत में जा कर ख़ुदा से जो हाज़िर व नाज़िर है। अपनी उर्दू ज़बान में बात किया करो और उस से कहो कि ऐ हमारे ख़ालिक़ मालिक हम गुनाहगारों पर रहम कर हमारे गुनाहों को माफ़ कर दे हमें अपनी राह-ए-रास्त दिखा। सब रुकावटों को जो तेरे पास आने से रोकती हैं, दफ़ाअ कर हमें अपना ख़ास बंदा बना ले वग़ैरा, जहां तक चाहो बातें करो। लेकिन इस चिल्ले के साथ कुछ परहेज़ भी दरकार है। ना सिर्फ चालीस दिनों तक बल्कि सारी उम्र भर और वो ये है कि ख़ुदा के इन दस हुक्मों पर बहुत लिहाज़ रहे। जो किताब ख़ुरूज के 20 बाब में मर्क़ूम हैं और ख़ुदा तआला ने अपनी क़ुदरत की उंगली से एक लौह पर लिख कर मूसा को दीए थे। बल्कि हर एक तमीज़दार इन्सान की रूह में वो ख़ुदा की तरफ़ से जलवागर हैं और मुहम्मदी शरीअत के मुवाफ़िक़ भी हैं वो यह हैं।

- तू मेरे सिवा किसी और ख़ुदा ना जानना। पस हमा औसत (بمہ اوست) को छोड़ना।
- किसी मूर्त की पूजा ना करना। पस क़ब्र परस्ती और पीर परस्ती मुतलक़ छोड़ना।
- ख़ुदा का नाम बेजा ना लेना। पस अल्लाह अल्लाह करके और हूहक़ बक-बक ना करना चाहिए।
- सब्त को मानना। यहूदी लोग हफ़्ते के दिन को सब्त मानते थे। मसीही इतवार को सब्त मानते हैं। मुहम्मदी लोग जुमा को इज़्ज़त देते हैं। लेकिन वो भी मसीह की सलीबी मौत का दिन है।
- वालदैन की इज़्ज़त करना। ताज़ीम और ख़िदमत और इताअत वाजिबा से ना कि ग़ैर वाजिबा से।
- ख़ून ना करना। ये तो ख़्वाह-मख़्वाह ही मानोंगे क्योंकि ख़ूनी को सरकार फांसी देती है लेकिन दिल में भी किसी की ख़ूँरेज़ी का ख़्याल ना करना।
- ज़ीना ना करना। इस गुनाह के सबब से बड़ी लानतें ख़ुदा से आती हैं। और ख़ाना-ख़राबियाँ होती हैं।
- चोरी ना करना। ख़ुदा को सब कुछ मालूम है उस से डर कर ऐसा काम हरगिज़ ना करना।

- झूटी गवाही ना देना। ना सिर्फ कचहरी में दर्मियान किसी मुक़द्दमा के मगर पीरों और क़ब्रों की निस्बत झूटी करामातें सुनाना भी झूटी गवाही है।
- ग़ैर की चीज़ का लालच ना करना। अपने हिस्से पर क़नाअत (जितना मिल जाए उस पर सब्र करना) चाहीए पस इस परहेज़गारी के साथ चिल्लाकशी मुफ़ीद होगी।

25 फ़स्ल सूफ़िया के विर्द वज़ाइफ़ के बयान में

सूफ़ियों के पास बहुत विर्द वज़ाइफ़ हैं जो कि उनके बुज़ुर्गों ने उन्हें बतलाएं हैं बाअज़ कोई दुरूद पढ़ते हैं बाअज़ किसी क़ुरआनी सूरह का विर्द पढ़ते हैं। बाअज़ कोई हिज़्ब-उल-बहर या क़सीदा गौसिया वग़ैरा का इस्तिमाल करते हैं। लेकिन कोई ना कोई मुख़्तसर अरबी फ़िक़्रह अरबी का ये सब लोग हर वक़्त पढ़ने के लिए पीरों से पहुंचा हुआ ज़रूर विर्द ज़बान रखते हैं। और समझते हैं कि इन इबारतों के पढ़ने से इलाही बरकत आती है। ये तरीक़ा क़दीम बुत-परस्तों का है और इस से कुछ फ़ायदा नहीं होता सिर्फ़ वक़्त ज़ाए और दिमाग़ ख़ाली होता है। और बेफ़ाइदा बक बक में ये सब वज़ाइफ़ दाख़िल हैं। मसीह ने हमें इन कामों से मना किया है। और फ़रमाया है कि ग़ैर लोग समझते हैं कि उनकी ज़्यादा गोई से उनकी सुनी जाएगी लेकिन तुम मसीही ऐसे काम ना करो ये ख़ुदा के सामने बक बक है सहीह तरीक़ा है कि कलाम-उल्लाह में ग़ौर और फ़िक्र करके ख़ुदा की राहों को दर्याफ़्त करना और अपनी इन्सानी राहों से इस का मुक़ाबला करके हर रोज़ बुराई से अलग और भलाई से मेल पैदा करते जाना ये हक़ीक़ी वज़ीफ़ा ख़वानी है। ना कि हज़ार दफ़ाअ हर रोज़ या बद हो या बद हो कहना जैसे सय्यद मीरान भीक के मुरीद करते हैं वग़ैरा।

26 फ़स्ल- नक़्शबंदिया की बाअज़ इस्तिलाहात के बयान में

इन लोगों के पास ग्यारह लफ़्ज़ ऐसे उम्दा हैं जिनके सुनाने से वो सादा लोहों के दिलों को अपनी तरफ़ ख़ूब खींचते हैं, क्योंकि लोग समझते हैं कि जिस आदमी में ये ग्यारह बातें हों वह तो ज़रूर वली अल्लाह होंगे। वो ग्यारह लफ़्ज़ ये हैं :-

वक़ूफ़ क़ल्बी (وقوف قلبی), वक़ूफ़ ज़मानी (وقوف زمانی), वक़ूफ़ अददी (وقوف عددی), होश दरुम (ہوش دروم), नज़र बरक़दम (نظر برقدم), सफ़र दरवतन (سفر دروطن), ख़ल्वत दर अंजुमन (خلوت درانجمن), याद कर्द (یاد کرد) बाज़गश्त (بازگشت), निगाह दाश्त (نگاہداشت), यादाश्त (یاداشت)।

वक़ूफ़ क़ल्बी (وقوف قلبی) ये है कि ज़िक्र के मफ़्हूम से ज़ाकिर का क़ल्ब आगाह रहे।

मैं कहता हूँ कि ज़र्बों की दहमादम में ज़िक्र का मफ़्हूम ऐसा गुम होता है कि सिवा जिस्मानी रगड़ों के और कुछ नज़र नहीं आता फिर ज़िक्र होता है। ला-इलाहा इल-लल्लाह का जिसका मफ़्हूम ये है कि सब झूटे माबूद बातिल हैं ख़ुदा सच्चा माबूद बरहक़ है सूफ़िया ने इस का मफ़्हूम हमा औसत (ہمہ اوست) निकाला है। जो लफ़्ज़ों से कुछ ताल्लुक़ नहीं रखता फिर वो क्योंकर लफ़्ज़ों से चस्पाँ रह सकता है?

मैं समझता हूँ कि वक़ूफ़ क़ल्बी (وقوف قلبی) ये है कि दिल हर वक़्त ख़ुदा की हुज़ूरी में रहे ज़िक्र हो या ना हो और ये बरकत हम मसीहीयों को बाफ़ज़्ले मसीह बिला-मशक्कात ख़ूब हासिल है क्योंकि उसने जिसके हम मुरीद हैं हमारे दिलों में ख़ुदा की मुहब्बत को जारी कर दिया है।

वक़ूफ़ ज़मानी (وقوف زمانی) ये है कि सूफ़ी अपने हाल से आगाह रहे। कि उस का हर वक़्त इताअत में गुज़रता है या मासियत में। ये कैसी बात है जब कि सूफ़ी हमा औसत (ہمہ اوست) का क़ाइल है। और फ़ाइल हर फेअल का ख़ुदा को मानता है। और वहदत-उल-वजूद में ग़र्क़ है। फिर इताअत और मुसीबत क्या चीज़ है। क्या वो ईमान लाता है कि मैं फेअल मुख़्तार इन्सान हूँ और बदी मुझसे होती है ना कि ख़ुदा से अगर वो ऐसा मानता है तो सूफ़ी नहीं है। फिर ज़िक्र का फ़र्ज़ी मफ़्हूम उस के पास कहाँ है? सच्चा वक़ौफ़ ज़माने, सच्चे मसीहीयों से होता है, कि वो हर वक़्त अपना हिसाब आप लेते हैं।

वक़ूफ़ अददी (وقوف عددی) उस को कहते हैं कि नफ़ी इस्बात का ज़िक्र बरिआयत ताक़ हुआ करे जुफ़्त ना रहे यानी 20 नर है इक्कीस बार वगेरा हो जाए ताकि जुफ़्त जुफ़्त अलग करके आख़िर को तीन जो ताक़ हैं बाक़ी रहें। क्योंकि वो समझते हैं कि ان اللہ وتر یحب الوتر अल्लाह ताक़ है और ताक़ को प्यार करता है।

<u>मिश्कात शरीफ़ - जिल्द दोम - अल्लाह तआला के नामों का बयान - हदीस 80</u>

अस्मा-ए-बारी तआला को याद करने के लिए बशारत

<u>रावी :-</u>

عن أبي هريرة رضي الله عنه قال : قال رسول الله صلى الله عليه و سلم : " إن لله تعالى تسعة وتسعين اسما مائة إلا واحدا من أحصاها دخل الجنة " وفي رواية : " وهو وتر يحب الوتر .

हज़रत अबू हुरैरा रज़ीयल्लाह तआला अन्हो रावी हैं कि रसूल करीम सल्लल्लाहो अलैहि व आले वसल्लम ने फ़रमाया अल्लाह तआला के निनान्वें नाम हैं यानी एक कम सौ जिस शख़्स ने इन नामों को याद किया वो इब्तिदा ही में बग़ैर अज़ाब के जन्नत में दाख़िल होगा। एक रिवायत में ये भी है कि अल्लाह तआला ताक़ है और ताक़ को पसंद करता है। (बुख़ारी व मुस्लिम')

ये हदीस है मुहम्मद साहब की और ये मुक़ाम सूफ़ियों और मुसलमानों और मसीहीयों के लिए फ़िक्र का है क्योंकि इस में मुहम्मद साहब गवाही देते हैं कि अल्लाह ताक़ है। मुहम्मदी सूफ़ियों को चाहीए कि लफ़्ज़ ताक़ का बयान करें कि क्या है? क्योंकि मुजर्रिद वाहिद तो ताक़ नहीं हो सकता। और यह हदीस मोअतबर हदीसों में से है। और सब अहले हिंदसा जानते हैं कि एक का अदद ना ताक़ है ना जुफ़्त दो जुफ़्त है, और तीन ताक़ है, और तमाम मुहम्मदी फिलासफर कहते हैं कि अदद अदना नाम है तीन का जिसको अंग्रेज़ी आलिम प्राइम नंबर कहते हैं। और हम मसीही बहिदायत कलाम, अल्लाह तआला को ताक़ यानी तस्लीस समझते हैं। और ये भी सच्च है कि ख़ुदा ताक़ से प्यार करता है। क्योंकि उस की ज़ात-ए-पाक को इस से मुनासबत है। और यही सबब है कि उस की हम्द में आस्मान पर फ़रिश्तगान अदद ताक़ की रिआयत रखते हैं। और कहते हैं कि क़ुद्दूस क़ुद्दूस क़ुद्दूस रब- उल-अफ़वाज।

सूफ़ी कहते हैं कि ज़िक्र में अदद ताक़ की रिआयत रहे ताकि ख़ुदा उस को पसंद करे। हम कहते हैं कि ज़ात-ए-पाक में भी ताक़ की रिआयत रहे पस हमारा वक़ूफ़ अददी कामिल है ना कि उनका उन्होंने इन्न-अल्लाह वित्र (ان اللہ وتر) को तो छोड़ दिया जो असली बात थी और इस की जगह में हमा औसत (ہمہ اوست) रख दिया। लेकिन यहुब्बुल-वित्र (یحب الوتر) पर अमल करना चाहते हैं। अख़ीर अन्हुम ग़नीमत अस्त इस मुक़ाम को कई बार गौर से पढ़ो और इस का मतलब हिफ़्ज़ कर लो।

होश दरुम (ہوش دروم**)** के मअनी ये हैं कि सूफ़ी हर सांस से आगाह रहे कि वो ग़फ़लत में ना गुज़रे। ये बात मुहाल है जो हो नहीं सकती क्योंकि ग़फ़लत जिस्म का ख़ास्सा है। देखो ख़ुद मुहम्मद साहब क्या फ़रमाते हैं :-

मिश्कात शरीफ़ - जिल्द दोम - इस्तिग़फ़ार व तौबा का बयान - हदीस 85

आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की तौबा व इस्तिग़फ़ार

रावी :-

وعن الأغر المزني رضي الله عنه قال : قال رسول الله صلى الله عليه و سلم " : إنه ليغان على قلبي وإني لأستغفر الله في اليوم مائة مرة " . رواه مسلم

हज़रत अगर-मज़नी रज़ीयल्लाह तआला अन्हो कहते हैं कि रसूल करीम सल्लल्लाहो अलैहि व आले वसल्लम ने फ़रमाया ये बात है कि मेरे दिल पर पर्दा डाला जाता है और मैं दिन में सौ मर्तबा अल्लाह तआला से इस्तिग़फ़ार करता हूँ। (मुस्लिम)

(انہ لیغانُ علی قلبی) मेरे दिल पर ग़फ़लत का पर्दा आ जाता है। बंदे ने इस हदीस का बयान ताअलीम मुहम्मदी में मुफ़स्सिल लिख दिया है। अगर ख़ूब समझना चाहो तो वहां देखो।

नज़र बरक़दम (نظر برقدم**)** ये है कि जब सूफ़ी कहीं उठ कर जाये तो इस की नज़र पीर की पुश्त पर रहे ताकि मुतफ़र्रिक़ चीज़ों को देखने से तबीयत परागंदा ना हो और नज़र बेजा ना हो जाये। पस इस बात को पसंद नहीं करना चाहिए कि सब चीज़ों को जो दुनिया में हैं देखें। ख़ुदा ने आँखें इसी लिए दी हैं कि हम इस जहान की चीज़ों को देखें अगर हम अल्लाह के लोग हैं और ख़ुदा हमारा दोस्त हो कर हमारे साथ है तो हम ज़रूर नेक नज़र रहेंगे। अगर ख़ुदा हमारे साथ नहीं है और ज़बरदस्ती उस की हुज़ूरी को अपने ख़्याल में रखते हैं। तो इस बनावट से हम कहाँ तक नेक रहेंगे? ख़्वाह नज़र बर क़दम हों। ख़्वाह बर फ़लक बद ख़यालात ज़रूर दिल में पैदा होंगे।

सफ़र दरवतन (سفر دروطن**)** ये है कि सिफ़ात बशरीह से निकल कर सिफ़ात मल्किया में जाना सूफ़ी लोग तुहमात में मुब्तला हैं हम क्योंकर यक़ीन करें।

कि वो सिफ़ात बशरीह से निकल कर सिफ़ात मल्किया में जाया करते हैं? ये हम मानते हैं कि जब क़ियामत के दिन मोमिनीन नए बदन में हो कर मसीह में उठेंगे, तब फ़रिश्तों की मानिंद होंगे। फ़िलहाल कभी ऐसा वक़्त भी आ जाता है कि ख़ुदा की हुज़ूरी के आसार ज़्यादा दिलों में ज़ाहिर होते हैं। उस वक़्त अजीब ख़ुशी और जलाल का साया दिलों में महसूस होता है और हम्द व सना का लुत्फ़ आता है जो कि बयान से बाहर है। मेरे गुमान में सफ़र दरवतन ये है कि कि आदमी हमेशा क़द वसीत में तरक़्क़ी करे। और जिस्मानी बद ख़्वाहिशों में से निकलता रहे गोया वो अपने वतन के क़रीब आता जाता है और अपनी रूह में आस्मानी मुसाफ़िर है जब सफ़र तमाम होगा, तब वतन में जा पहुँचेगा। हाँ ये कैफ़ीयत हमारे तजुर्बे में आ चुकी है इसलिए हम उस के मुक्कीर हैं। मगर ये बख़्शिश सिर्फ़ मसीही ईमानदार को हासिल होती है। जब कि वो ख़ुदावंद मसीह का पैरौ है सिवाए मसीही के हो नहीं सकता कि कभी किसी को हासिल हो।

ख़ल्वत दर अंजुमन (خلوت درانجمن) इस के मअनी हैं कि बज़ाहिर जमाअत में और बातिन ख़ुदा के साथ रहना ये दिली हुज़ूरी का बयान है। जो कि बहुत से मसीहीयों को मसीह के फ़ज़्ल से हासिल है। सूफ़िया को अगर कुछ हासिल हुआ भी तो यही होगा कि वो जमाअत में बैठा है। और दिल में उस के हमा औसत (بمہ اوست) है। जो ख़ुदा नहीं है एसी ख़ुदा की हुज़ूरी से किया फ़ायदा है? क्योंकि अगर हमा औसत (بمہ اوست) का ख़्याल सहीह हो तो ख़ल्वत दर अंजुमन तहसील हासिल है।

याद कर्द (یادکرد) ये है कि ग़फ़लत को बकोशिश दूर करना। ग़फ़लत से क्या मुराद है? अगर ग़फ़लत-फ़ील-अहकाम (غفلت فی الاحکام) मुराद है तो फ़र्ज़ है कि वो ग़फ़लत बकोशिश दूर की जाये और हम भी इस बात में इत्तिफ़ाक़ रखते हैं। मगर सूफ़िया की मुराद यही मालूम होती है कि ख़ुदा की याद में अगर ग़फ़लत आए तो बकोशिश दूर करनी चाहिए। ख़ुदा मौजूद है। ये ख़्याल तो एक ऐसा बदीही है कि हर हाल में आदमी को याद रहता है। लेकिन हमा औसत (بمہ اوست) का ख़्याल जो बातक्लीफ ज़हन में जमाया जाता है वह ज़रूर ख़्याल से निकल भागने वाली चीज़ है। उस के लिए वो ज़ोर और कोशिश काम में लाते हैं।

बाज़गश्त (بازگشت) ये है कि पहले रूह में अल्लाह को याद करें फिर बज़बान दिल याद करें।

निगाह दाश्त (نگاہ داشت) ये है कि कैफ़ीयत आगाही की हिफ़ाज़त की जाये।

यादाश्त (یاداشت) ये है कि निगाह-दाश्त में पाएदारी हो। ये सब कुछ भला है। बशर्ते के ज़हन में उस ख़ुदा का ख़्याल हो जो फ़िल-हक़ीक़त ख़ुदा है। कोई बुत परस्तों का बुत ना हो। वर्ना उस के ये सब मेहनत बेफ़ाइदा और मुज़िर होगी। बुत परस्तों ने पत्थर व लकड़ी वग़ैरा के ख़ुदा तराशे हैं और अहले-अक़्ल व सूफ़िया वग़ैरा ने ख़्याली ख़ुदा तराशे हैं वो ख़्याली बुत हैं। हक़ीक़ी ख़ुदा वही है जिसका ज़िक्र बाइबल में है। क्योंकि ख़ुदा ने ख़ुद बतलाया कि मैं क्या हूँ? पस सच्चे ख़ुदा के लिए जितनी मेहनत करोगे, फल पाओगे। और ख़्याली बुतों के लिए जो मेहनत होगी, शर्मिंदगी का बाइस होगी।

27 फ़स्ल लताइफ़ ख़मसा (لطائف خمسہ) के बयान में

तरीक़ा मुजॅदिदया वाले कहते हैं कि तमाम आलम की दो किस्में हैं। आलम ए ख़ल्क़ और आलिम ए अम्र। अर्श यानी ख़ुदा के तख़्त के नीचे का जहान आलम ख़ल्क़ है और अर्श के ऊपर का जहान आलम अम्र है या इन दोनों आलमों के मजमूए का नाम आलम ए कबीर है और आलम ए सग़ीर हर एक इन्सान है।

आलम ए ख़ल्क़ के पाँच उसूल हैं, यानी नफ़्स और अनासिरे अर्बअ और आलम ए अम्र के पाँच उसूल हैं क़ल्ब, रूह, सरख़फ़नी, अख़फ़ा पस आलम ए कबीर मुरक्कब है अजज़ा अशराअ से फिर वो कहते हैं कि जब ख़ुदा ने इन्सान को पैदा किया है तो आलम ए कबीर के साँचे पर गोया एक आलम सग़ीर सा बनाया है क्योंकि उन्हें आलम कबीर की सब चीज़ें इस में मालूम होती हैं। पांचवां उसूल आलम ख़ल्क़ के इस में हैं यानी अर्बा अनासिर और नफ़्से नातिक़ा और पांचवां उसूल आलम अम्र के इस में यूं फ़र्ज़ करते हैं, कि क़ल्ब को जो आलम अम्र का एक लतीफ़ा है, सनोबरी गोश्त के टुकड़े में अल्लाह ने रखा है। और रूह को जो आलम अम्र का दूसरा लतीफ़ा है बाएं पसली के नीचे रखा है और सर को वसती सीना और रूह के माबैन जगह दी है। और ख़फ़ी को रूह और सिर के दर्मियान रखा और अख़फ़ी को ठीक वस्त सीना में रखा दिया है।

पस अब कमाल हासिल करने के लिए अव्वलन क़ल्ब की सफ़ाई चाहिए फिर दीगर लताइफ़ में बज़रीया ज़िक्र के सफ़ाई होती रहेगी। और जब तमाम लताइफ़ साफ़ होंगे तब आदमी फ़नाफ़िल्लाह हो जाएगा।

मेरे गुमान में ये उनका बयान बेअसल सिर्फ़ वहम है। क्योंकि वो ख़ुद अपने इस बयान को नहीं समझा सकते कि ये क्या बात है? और ना इस का सबूत दे सकते हैं। हाँ अनासिर की बाबत कुछ बातें कर सकते हैं। सो भी उसी दर्जा तक अहले इल्म ने लिखा है कि मगर लताइफ़ की बाबत जो कहते हैं कि वो वहमी बयान है। आलम कबीर को किसी बशर ने नहीं देखा और ना इन्सान देख सकता है। कौन जानता है कि आलम कबीर की कैफ़ीयत क्या है? ये इल्म सिर्फ़ ख़ुदा को है। और मुहम्मद साहब फ़रमाते हैं कि وما اوتیتم من العلم الاقلیلاً तुमको बहुत थोड़ा इल्म दिया गया है। फिर इन सूफ़िया ने क्योंकर आलम कबीर की कैफ़ीयत से आगाह हो कर उस का ख़ुलासा इन्सान में पाया है? ख़ैर इस बहस को छोड़ता हूँ कि इन्सान आलम सग़ीर है कि नहीं। लेकिन इस बात को मानता हूँ कि इन्सान ख़ुदा की सूरत पर बनाया गया और आज़ाद था। इस की वो सूरत इलाही गुनाह और इस के वबाल के सबब से बिगड़ गई है और वो लानती हो गया है। मसीह ख़ुदावंद इसलिए दुनिया में आया कि फ़रमांबर्दार मोमिन की बिगड़ी हुई सूरत को अपनी क़ुदरत की तासीर से बहाली बख़्शे और उस पर से लानत को हटा दे।

ये भी सच्च है कि अव्वलन क़ल्ब की सफ़ाई चाहिए क्योंकि क़ल्ब हर इन्सानियत की इन्सानी ज़िंदगी का मर्कज़ है। लेकिन मेरा सवाल सूफ़िया से ये है कि पहले साफ़ साफ़ इन बातों का फ़ैसला करो। कि क़ल्ब वग़ैरा में क्यों कुदरत आ गई और क्या कुदूरत है? बगमान शुमा सब कुछ ख़ुदा में से निकला है। क्या कुदरत भी ख़ुदा में से निकली है? अगर वहां से निकली है तो कुदरत भी ख़ुदा है, उसे क्यों फेंकते हो? क्यों रियाज़त बेफ़ाइदा करते हो? एक क़दम पैग़म्बरों के घर में दूसरा बुत-ख़ाने में रखते हो। पस तुम सोचो कि किधर के हो और कहाँ की बोलते हो।

28 फ़स्ल हलक़ा और तूझ के बयान में

सरगर्म पीरों का एक ख़ास वक़्त ख़ुसूसुन मग़रिब के बाद मुक़र्रर होता है। जब वो अपने मुरीदों को लेकर ज़िक्र फ़िक्र में मशग़ूल होते हैं। इस को हलक़ा और तवज्जा का वक़्त कहते हैं। और उनके ख़ानदानों में इस के जुदा-जुदा तौर हैं चिशतियों का और तौर है, नक़्शबंदियों का और है। मगर मैं यहां क़ादरियों का तौर बयान करता हूँ। क्योंकि उनके हलक़ों में जाने का मुझको अक्सर इत्तिफ़ाक़ हुआ है।

मग़रिब की नमाज़ के बाद पीर साहब एक कोठरी में जा कर पुश्त बदीवार अपनी मुस्नद पर बैठे हैं। और मुरीद आते रहते हैं। चंद मिनट में सब लोग जमा हो कर दायरे की शक्ल में पीर के सामने बैठ जाते हैं और दरवाज़ा बंद किया जाता है। तब पीर साहब आँखें बंद करके अपने दिल की तरफ़ मुतवज्जा होते हैं। और सब मुरीद पीर के मुँह की तरफ़ बराबर तकते रहते हैं और पीर साहब शूँ शूँ की आवाज़ से ज़िक्र की धूँकनी जारी करते हैं। जब सांस की रगड़ों की गर्मी बदन में आती है। उस वक़्त आँख खोल कर बाएं तरफ़ वाले मुरीद को घूर कर ग़ौर से देखते हैं। और शूँ शूँ का जुटका देते हैं। फ़ौरन वो मुरीद भी इसी तरह हूँ हूँ मैं ज़िक्र जली जारी करता है। यानी वही नफ़ी इस्बात का ज़िक्र शुरू करता है। और पीर साहब फिर बतौर साबिक़ अपने दिल की तरफ़ मुतवज्जा होते हैं। फिर आँख उठा कर दूसरे को झटका देते हैं। अला हज़ाल कियास सब मुरीदों से ये मुआमला होता है। और सब मुरीद मय पीर साहब घंटा घंटा तक हूँ हूँ का शोर करते रहते हैं। और अर्क़ अर्क़ हो जाते हैं और थक थक कर चुप करते जाते हैं। जब सब चुप हो गए, पीर साहब हाथ उठा कर अलहम्द वग़ैरा पढ़ते हैं। और सब लोग मुँह पर हाथ फेर लेते हैं। ये मश्क़ हर-रोज़ होती है। इस नशिस्त के दायरे का नाम हलक़ा है। और पीर साहब के घूर कर झटका देने का नाम “तूझ” है। गोया पीर साहब अपने अंदर से कुछ बरकत निकाल कर रोज़ रोज़ मुरीदों के दिलों में डालते हैं। इस से कभी कुछ फ़ायदा नहीं होता। अगर कहीं कुछ तासीर हुई भी हो तो ये निशान विलायत नहीं है। बल्कि मसमरेज़म (mesmerism) की बात है जो मोमिन और काफ़िर सब कर सकते हैं। “तूझ” की सूफ़िया में बड़ी इज़्ज़त समझी जाती है कि पीर में कुछ क़ुदरत है, वो हम में असर करेगी। हमेशा इस “तूझ” के लिए कामिलीन की तलाश में रहते हैं। और कभी दिल सैर नहीं होता। मैंने अक्सरों को बड़ी तमन्ना से ये शेअर पढ़ते सुना :-

انانکہ خاک بنظر کمیا کنند آیا بود کہ نظر سے بر من گدا کنند

अनानका ख़ाक बंज़र कमिया कनंद
आया बूद कि नज़र से बरमन गदा कनंद

अल्लाह का दरवाज़ा छोड़ दिया पीरों का दरवाज़े पर भीक मांगते फिरते हैं जब कुछ नहीं पाते तो कहते हैं कि हमारी क़िस्मत। अरे नादान क़िस्मत क्या चीज़ है तू ख़ुदा से भीक मांग वो दे सकता है। तूने भूकों के दरवाज़ों पर जा कर भीक मांगी

और ख़ाली आया। वो जो ग़नी है उस के दरवाज़े पर क्यों ना गया? कि वो तुझे सैर करता उस का वाअदा है कि जो कोई मेरे पास आता है मैं उसे निकाल ना दूँगा।

मैंने भी इन सूफ़ियों की बहुत ख़ाक छानी बल्कि ख़ाक फांकी उस वक़्त मैं मसीही दीन से ऐसा नावाक़िफ़ था जैसे इस वक़्त बाअज़ देहाती नावाक़िफ़ हैं मैंने सच्चे एतिक़ाद और नेक नीयती से ऐसा किया जैसा करना चाहीए मैं हमेशा जुनैद बग़्दादी और बशीर हानि और सिरी सकती वग़ैरा की रविशों को निगाह रखता था। और सिर्फ ख़ुदा से ये सुनने का मुहताज था कि तेरा अंजाम बख़ैर है पीर बन के रूपये और इज़्ज़त लेने से मुझे नफ़रत थी। तमाम जफ़ाकशी के बाद मुझे यही मालूम हुआ कि ये राह ख़ुदा से मिलने की नहीं है। इस से सिर्फ यही हासिल होता है कि आदमी जाहिलों में पीर कहलाए और दुनिया कमाए आक़िबत का दग़दग़ा रूह में से नहीं निकलता। पस मैं इन मशक़्क़तों से थका मान्दा और नाउम्मीद बल्कि मुतनफ़्फ़िर (नफरत करने वाले) हो कर करवली से पानीपत में आया यहां मेरे एक बुज़ुर्ग मेहरबान मौलवी अबदूस्सलाम इमाम साबिर बख़्श देहलवी के दामाद क़ाज़ी सना उल्लाह के पोतों में से थे। और सूफ़ी आलिम गोशा नशीन कमगो अहले फ़िक्र में से थे। मैं ख़ल्वत में जा कर उन से इस मज़ाक़ की बातें किया करता। अब आकर मैंने उनसे कहा कि ना इस्लाम से मेरी तसल्ली होती है और ना तसव्वुफ़ से। मैं अब इन सब तरीक़ों की पाबंदी छोड़ता हूँ और ख़ुदा की तलाश दुनिया के और फ़िर्क़ों में जाकर करूँगा। अगर आप मुझे बदलील रोक सकते हैं तो मेहरबानी करके रोकें। नीचे सर कर लिया और चुप कर गए। आख़िर मैं सलाम करके चला आया सात साल के बाद मुझ पर ये ज़ाहिर हुआ कि ख़ुदा का दीन सिर्फ मसीही दीन है। और आक़िबत बख़ैर इसी से होती है। उस वक़्त मैं लाहौर में था। और जब मुझ पर ये ज़ाहिर हुआ। तब मैंने बटाला वाले साहब से यानी शाह मौलवी मीर अहसन साहब से कि सूफ़ी आलिम थे। ये भेद खुफ़ीयतन वज़ीर ख़ान की मस्जिद वाक़ेअ लाहौर में बैठ कर कहा कि अगर आप बदलील मेरी तसल्ली करके मुझे मसीही होने से रोक सकते हैं तो ख़ुदा के लिए ये काम कीजीए। फ़रमाया कि रोकने की दलीलें और तसल्ली की ताक़त मैं नहीं रखता मगर ये कहता हूँ कि मसीही होने से तुम्हारी मौलवियत इज़्ज़त तो जाती रहेगी। मुसलमान गालियां देंगे रिश्तेदार छूट जाएंगे और मसीही लोग यानी अंग्रेज़ भी तुम्हारी कुछ परवाह ना करेंगे। आम मसीहीयों की तरह मारे मारे फिरोगे। तब मैंने कहा कि अगर इज़्ज़त व आराम की हिफ़ाज़त करता रहूं तो ख़ुदा हाथ से जाता है और अगर ख़ुदा को थामता हूँ तो ये सब चीज़ें हाथ से जाती हैं। एक नुक़्सान तो मुझे बहरहाल हाथ से उठाना है। अक़्ल का हुक्म है कि ऐसी हालत में छोटे नुक़्सान को गवारा करना चाहिए कि बड़ा नुक़्सान ना हो पस मैं सलाम करके चल दिया और मसीही हो गया। और मेरी रूह में तसल्ली आ गई, कि यक़ीनन मेरी

आक़िबत बख़ैर है। और अब जो मैं दुनिया में ज़िंदा हूँ हज़ार कमज़ोरियाँ मुझमें हों परवाह नहीं है मसीह ने मुझे बचा लिया है। मैं नजात याफ्ताह हूँ। ख़ुदा की और मेरी सुलह हो गई। मेरे गुनाह बख़्शे गए। मैंने अपनी रूह में ख़ुदा से फ़ज़्ल पाया। हाँ दुनियावी दुखों की मौजों में हूँ लेकिन वक़्त पर पार उतर कर ख़ुदा के पास आराम में अबद तक ज़िंदा रहूँगा, क्योंकि ख़ुदा हर वक़्त मेरे साथ है।

नापाक दिल कोताह अंदेश बाज़ारी मुसलमानों ने जो चाहा सो मुझे कहा और बाअज़ झूटे दीनी भाईयों ने भी जो दुख दिया मेरा दिल और ख़ुदा जानता है। बल्कि जिस्मानी रिश्तेदारों से ईज़ा पाई लेकिन उसी सब्र से काम निकला, जो पैग़म्बरों में था और ख़ुदा ने अपने फ़ज़्ल से दिल में इलक़ा किया। ये सब कुछ ख़ुदावंद यसूअ मसीह की पाक तवज्जा से हुआ जिसने मुझ पर रहम किया....वो एक ही शख़्स है जिसकी तवज्जा ख़ाक से अफ़्लाक पर पहुंचाती है। वो बात बिल्कुल ग़लत है कि दुनिया में ऐसे कामिलीन भी हैं कि जिनकी तवज्जा से बेड़ा पार होता है। पीर फ़क़ीर तो अलग रहे। सच्चे पैग़म्बरों की तवज्जा से भी कुछ नहीं होता। एक ही शख़्स है जिसकी तवज्जा से अव्वलीन व आख़रीन ने फ़ज़्ल पाया है। बग़ैर उस के फ़ज़्ल के ना कोई वली हो सकता है। ना कोई नजात पा सकता है। ना किसी का दिल साफ़ हो सकता है और ना ही माअर्फ़त हासिल होती है। सिर्फ उसी की तवज्जा से सब कुछ होता है।

वो जो कहते हैं कि हम मसीह को पीछे हटा कर सिर्फ़ ख़ुदा से फ़ज़्ल के उम्मीदवार हैं। वो सख़्त ग़फ़लत में हैं और नादान हैं। क्योंकि ख़ुदा जिसने अपना कलाम यानी बाइबल पैग़म्बरों के वसीले से दुनिया को ये सबूत दिया है। वो सादिक़ुल-क़ौल और ला तब्दील ख़ुदा है। और उस ने इस बात पर मुहर कर दी है कि बग़ैर ख़ुदावंद यसूअ मसीह के कोई नहीं बच सकता और ना रुहानी बरकत पा सकता है।

पस ऐ मेरे हम-मुल्क प्यारे भाईयों उट्ठो फ़िक्र करो और बाइंसाफ़ कलाम-उल्लाह को पढ़ो समझो और सब वाहीयात मोहलिक ख़यालात फेंक दो और मसीह पर ईमान ला कर पाक हो जाओ तब ख़ुदा तुम्हारे पास आएगा और तुम उस के पास जा सकोगे। बग़ैर इस ईमान के ख़ुदा और इन्सान में दुश्मनी रहती है। और किसी बात पर इलाही तवज्जा नहीं होती हक़ीक़ी हलक़ा ख़ुदा की कैथोलिक कलीसिया है और हक़ीक़ी तवज्जा ख़ुदावंद यसूअ मसीह से होती है इस बात पर बहुत सोचो।

29 फ़स्ल मुराक़बा (مراقبہ) के बयान में

लफ़्ज़ मुराक़बा (مراقبہ) अगर रक़ाबत (رقابت) से है तो मुहाफ़िज़त के मअनी में है और जो रकूबत (رقوبت) से है तो इंतिज़ारी के मअनी हैं। सूफ़िया मुराक़बा बहुत करते हैं। घरों में, मस्जिदों में, जंगलों में और ख़ुसूसुन बुज़ुर्गों की क़ब्रों पर बैठते हैं। और आँखें बंद करके लताइफ़ ख़मसा में से किसी लतीफ़े की तरफ़ मुतवज्जा होते हैं। ज़्यादी तर क़ल्ब की तरफ़। और इस काम की तरफ़ मुस्तग़र्क़ हो जाते हैं, इस उम्मीद से कि अंदर कुछ रोशनी नज़र आएगी लेकिन अंदर किया है अंधेरा।

जुनैद बग़दादी फ़रमाते हैं कि मैंने मुराक़बा का उम्दा तौर बिल्ली से सीखा है। वो चूहे के सुराख़ पर ऐसी दुबकी लगा कर बैठी थी कि इस का बाल तक नही हिलता था। मुझे ख़्याल आया कि मुराक़बा इसी तरह चाहिए। पस मैं ऐसा ही मुराक़बा करने लगा। (अज़ मामूलात मज़हरियाह)

मालूम हो जाये कि किसी आदमी के अंदर कुछ रोशनी नहीं है। सिर्फ गुनाह, नापाकी और तारीकी है। अगर रोशनी देखना चाहते हो तो कलाम उल्लाह के मज़ामीन में फ़िक्र करो ज़िंदगी का नूर वहां से देखोगे। और अगर चाहो कि वो नूर हम में जलवागर हो तो ईमान के साथ ख़ुदा के अहकाम बजा लाने और दुआ से ये होगा। और क्या होगा कि ना मिस्ल शोला आग के और या मिस्ल दुनियावी धूप के कोई रोशनी चमकेगी। मगर ख़यालों में ऐसी रोशनी आ जाएगी। कि नेक व बद में ख़ूब तमीज़ करोगे। और हक़ को पहचानोंगे। और ख़ुदा के बाअज़ पोशीदा भेद समझोगे। और शैतान की गहराई दर्याफ़्त कर के उस के जालों से बचोगे। और रूह में एक ताज़गी और ज़िंदगी ज़ाहिर होगी और इस आयत मुक़द्दस का भेद मुनकशिफ़ होगा कहा, जहाँ का नूर मैं हूँ। सूफ़िया उन मुराक़िबों में बेफ़ाइदा वक़्त ख़र्च करते हैं। इस तौर से ना किसी को कुछ हासिल हुआ है और ना होगा। हम मसीही भी कभी कभी आँखें बंद करके, ज़रा चुप हो जाते हैं। ये इसलिए है कि नादीदा ख़ुदा की तरफ़ ज़रा दिल को मुतवज्जा करें और दिली हुज़ूरी से ख़ुदा के सामने जाएं या उस का कलाम पढ़ें। और दुआ व नसीहत करें। ये दिली तवज्जा है और यही हमारा मुराक़बा है।

30 फ़स्ल शजरून (شجرون) और इजाज़त (اجازت) के बयान में

सूफ़िया अपने पीरों के शजरे रखते हैं कि फ़ुलां शख़्स का मुरीद फ़ुलां था। और इस का फ़ुलां मुरीद हुआ। अपने से लेकर हज़रत अली तक पहुंचाते हैं। और जब मुरीदों को शजरे देते हैं तो लफ़्ज़ बाहुक फ़ुलां या बातफ़ील् साफ़ लिखते हैं। और आख़िर में कुछ फ़िक्रह दुआ ख़ैर का होता है। मुरीद उन शजरों को पढ़ कर मुँह पर हाथ फेर लेते हैं। या सारे बदन पर दम कर लेते हैं। ये क्या लगू काम और बुरी आदत है।

तमाम बुज़ुर्ग तो ये कहते हुए दुनिया से चले गए कि :-

ماعرفناک حق معرفتک وماعبدناک حق عبادتک

और दिली तमीज़ साफ़ कहतीं है कि कि सिवा ख़ुदावंद यसूअ मसीह के कोई ऐसा शख़्स कभी दुनिया में ज़ाहिर नहीं हुआ। जिसकी माअर्फ़त और इबादत कामिल हो और जिसके आमाल हसना ऐसे बेनुक़्स हो कि वो कुछ अपने हुक़ूक़ ख़ुदा पर साबित करे। सब के सब शर्मसार और उम्मीदवार हैं। मैं नहीं जानता कि इन पीरों ने क्या हुक़ूक़ इन बुज़ुर्गों के ख़ुदा पर साबित कर रखे हैं। जिनके वास्ते से मुराद बरारी के उम्मीदवार हैं।

हम मसीही लोग ख़ुदावंद मसीह के नाम से दुआ मांगते हैं। क्योंकि उसने फ़रमाया है कि मेरे नाम से दुआ माँगो और उसने वो काम भी किए हैं। जो हमारी मक़बूलियत का वसीला हैं उस का तजस्सुम, तोवलद, खतना, बपतिस्मा, फ़ाक़ा, इमत्तीहान और शैतान से बातिनी कुश्ती और लहू का पीसना और अज़िय्यत-ए-सलीब और मौत व तदफीन और तीसरे दिन जी उठना और आस्मान पर जाना और रूह-उल-क़ूदुस का नाज़िल फ़रमाना ये सब काम बंदगान के फ़ायदे के लिए हुए हैं। उस को ख़ुद इन कामों में से किसी की हाजत ना थी और ये बरहक़ हुक़ूक़ हैं। जिनके सबब से वो हमारा वसीला बना। पीरों ने कौन से काम मुरीदों के लिए हैं। जो कुछ पीर साहब ने तसव्वुफ़ में जफ़ा कुशी की इसी इरादा और नीयत से की थी कि हमा औसत (بمہ اوست) के ख़्याल में ख़ुद फ़ना हो जाएं। ये मुरीद नाहक़ उनके पीछे चिमट गए हैं। बाअज़ समझते हैं कि शजरों से ये तवारीख़ी फ़ायदा है कि अपने सिलसिलों के नाम मालूम रहते हैं और दूसरा फ़ायदा ये भी हो सकता है कि किसी बात की सनद ऊपर तक पहुंच जाये। मगर सूफ़िया अपने तसव्वुफ़ की सनद ऊपर तक नहीं

पहुंचा सकते उन के मसाइल और अक़ाइद और अत्वार वक़्तन-फ़-वक़्तन इधर उधर से जमा होते हैं। ना हज़रत अली से ना मुहम्मद साहब से फिर सिलसिला और शिजरा से क्या फ़ायदा हुआ? सिर्फ ये कि इन बुज़ुर्गों के नाम से जाहिलों को अपने काबू में लाएं और आप मोअतबर साबित हों।

इजाज़त बे-शक एक संजीदा बात है। क्योंकि दीन की ख़िदमत मोअतबर बुज़ुर्गों से इजाज़त हासिल करके करना मुनासिब है। ताकि नालायक़ आदमी इंतिज़ाम दीन में ख़लल-अंदाज़ ना हों और बिद्दतें ना निकलें मगर सूफ़िया समझते हैं। कि किसी पैरांट और मंत्र में इजाज़त से तासीर होती है, ये वहमी बात है।

31 फ़स्ल सूफ़िया के बाअज़ ख़ास दाअवों के बयान में

अगर कोई आदमी कहे कि मैं ऐसी क़ुदरत रखता हूँ। कि उड़ कर सितारों में पहुँचूँ और आ जाऊं तो हम उस को क्या कहेंगे? सिर्फ ये कि हज़रत उड़ दिखलाओ।

सूफ़िया के पास पाँच दावे इसी क़िस्म के हैं। जिनसे वो अहमक़ों को धोका देते हैं। और जब कभी इन दाअवों का ज़िक्र आता है। तो कहते हैं कि हम में जो कामिलीन हैं वो ऐसे काम कर सकते हैं। लेकिन किसी कामिल का नाम और पता निशान नहीं देते। कि वो कौन है और कहाँ है? पस अब क्या किया जाएगा? कुछ नहीं दाअवों की तरफ़ देखना होगा कि क्या दाअवे हैं। और जब हम उनके दाअवों को देखेंगे। तो साफ़ अक़्ल से मालूम हो जाएगा। कि बाअज़ बातें मुम्किन हैं लेकिन विलायत और क़ुर्बत (नज़दिकी) इलाही का निशान नहीं हैं। और बाअज़ बातें हैं जो बिल्कुल बातिल हैं, उनका मानना बेवक़ूफ़ी है।

1. वो कहते हैं हम सल्ब अमराज़ करते हैं। और तरीक़ा यूं बतलाते हैं, कि बीमार को सामने बैठा दें। और अपने सांस को लंबा अंदर की तरफ़ खींचे और ख़्याल करें कि हमने बीमार की बीमारी को अपने अंदर खींच लिया है। फिर बाहर का सांस लें और ख़्याल करें कि हमने उस को बाहर ज़मीन पर फेंक दिया है। इसी तरह देर तक करते रहें। वो बीमार अच्छा हो कर चला जाएगा। इस बारे में हम यही कह सकते हैं कि वो कौनसा पीर आप लोगों में है, जो एसा करता है? और ये भी कहते हैं कि मसमरेज़म वाले भी ऐसे आमल के मुद्दई हैं। वो तो बड़े वली अल्लाह होंगे, क्या ये वली अल्लाह का निशान है या तरकीब है?

2. वो कहते हैं कि हम दिलों का हाल जान सकते हैं तरीक़ा यूं बतलाते हैं सूफ़ी को अपनी कैफ़ीयत से ख़ाली हो कर ख़ुदा की इल्मी सिफ़त में मुस्तग़र्क़ होना चाहिए और बाआजज़ी कहना कि या अलीम या ख़बीर उस शख़्स का हाल मुझे बतला दे पस जो कुछ उस वक़्त दिल में आए वही हाल उस शख़्स का है। ख़ुदा से कहना कि तू बतला दे कि ये तो मुनासिब काम है, लेकिन ख़ुदा उन को बतला देता है। इस का सबूत क्योंकर हो? इस का सबूत इस तरह हो सकता है कि कोई सूफ़ी उठे और ख़ुदा से हमारे दिल की बात पूछ कर हमें सुनाए। उस वक़्त हम कहेंगे कि ग़लत है या सहीह।

3. वो कहते हैं कि हमें मकाशफ़े और इल्हाम होते हैं। आजकल मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहब को इल्हाम हो रहे हैं। और सूफ़ी साहिबान कहते हैं कि हाँ साहब होता होगा। फ़ुलां फ़ुलां पीरों को फ़ुलां फ़ुलां वक़्त हुआ था। या नहीं। इधर नेचरियों को उन के ख़िलाफ़ इल्हाम हो रहा है। आसूदा हाल और पेट भरे आदमीयों को ऐसी बातें बहुत सूझती हैं। इस बारे में इतना कहना काफ़ी है। कि गुज़श्ता ज़माने में जो पैग़म्बरों को इल्हाम हुए हैं। उनकी एक ख़ास सूरत है और ख़ास वजह ये थी कि ख़ुदा को अपनी मर्ज़ी बंदगान पर ज़ाहिर करना मंज़ूर था। सो उसने किया। और सूरत ये थी कि ऐसे दलाईल क़ुद्रतिया के साथ वो इल्हामात पेश हुए कि अक़्ल की मज्बूरी से इन का मानना लाज़िम है इन सूफ़िया के इल्हामात और मुकाशफ़ात की वजूहात और सूरतें इस लायक़ नहीं हैं, कि उनका ख़ुदा की तरफ़ से होना साबित हो वो तो तुहमात और ज़हनी ख़यालात हैं। और में क्या कहूँ? मगर ये कि अगर वो इल्हामात ख़ुदा की तरफ़ से हैं तो उनमें जमाअ करके क़ुरआन के साथ मुजल्लद करो कि मुसलमान लोग नमाज़ में पढ़ा करें।

4. वो कहते हैं कि हम सिर्फ तवज्जा से आदमी को नेक अत्वार बना देते हैं इस का तरीक़ा यूं लिखा है कि भला आदमी बनाना मंज़ूर है उसे सामने ला कर बिठाओ और अगर वो हाज़िर ना हो तो उस का तसव्वुर करो और बवसीला ख़्याल के उस के दिल में तौबा डालो और शौक़ फेंको पस वो तौबा करके नेक हो जाएगा।

मैं कहता हूँ कि हज़रत मुहम्मद साहब से तो हरगिज़ ना हुआ। बहुत चाहा कि अबू जहल चचा मुसलमान हो जाये पर वो ईमान ना लाया और तमाम सच्चे पैग़म्बरों से भी ये ना हुआ और तमाम गुज़श्ता सूफ़ी बुज़ुर्गों से भी ऐसा ना हुआ। बाअज़ रिश्तेदारों के लिए सर पटक कर रह गए खैर अब अगर कोई कामिल सूफ़ी दुनिया में है तो वो उठे और हम मसीहीयों और हिन्दुवों की ज़िंदगी में अपने इस्लाम या

तसव्वुफ़ को फेंके। लोगों के हक़ में दुआ-ए-ख़ैर से तो कभी कभी कुछ फ़ायदा देखा गया है लेकिन फेंकना कुछ बात नहीं है। वही वहम है।

5. वो कहते हैं कि सूफ़ी लोग खुलाअ दुलबस कर सकते हैं।

खुलाअ के मअनी हैं छोड़ना, लबस के मअनी हैं पहनना। मुराद ये है कि सूफ़ी लोग अपने बदन को छोड़कर किसी ग़ैर के बदन में अपनी रूह को ले जा सकते हैं। इस का तरीक़ा यूं है कि ख़याल में अपनी रूह को पैरों की उंगलीयों से शुरू करके खींचो और तमाम बदन में से इकट्ठा करते हुए दिमाग़ में लिए जाओ जब सारी रूह वहां इकट्ठी हो जाये तब मुँह या नाक की राह से निकालो और किसी ग़ैर मुर्दा बदन जो कि सामने पड़ा हो दाख़िल करो पस तुम्हारा बदन मर जाएगा। और वो, मुर्दा बदन जी उठेगा और तुम जानों कि मैं इस में आ गया हूँ। ये पुराने ज़माने की झूटी बातों में से एक बात है। लेकिन सूफ़िया को इस पर यक़ीन है। मालूम नहीं कि इल्म-उल-यक़ीन या हक़्क़-उल-यक़ीन या ऐनुलयक़ीन है?

32 फ़स्ल तनासुख़ (تناسخ) के बयान में

सब सूफ़ी तो नहीं मगर बाअज़ सूफ़ी तनासुख़ (تناسخ) के भी क़ाइल हैं और ऐसे ऐसे शेअर सुनाते हैं :-

ہم چو سبزہ بارہا روئیدام   یکصد ور ہفتاد قالب دیدہ ام

मैं समझता हूँ कि क़ुरआन तनासुख़ का क़ाइल नहीं है। और मुहम्मदी भी तनासुख़ को नहीं मानते वो बाअज़ सूफ़ी जो तनासुख़ के क़ाइल हैं उन्होंने बहुत बातों में इस्लाम को अपने दिलों में से निकाल रखा है। और वो हमेशा बुत परस्तों के ख़यालात की तरफ़ मुतवज्जा होते हैं।

शरह मवाक़िफ़ वग़ैरा में जो तनासुख़ की बाबत मर्क़ूम है उस का ख़ुलासा ये है। अहले-तनासुख़ जो जिस्मानी क़ियामत के मुन्किर हैं यूं कहते हैं कि अर्वाह मर्दुम जब अपने कमालात को पहुंच जाते हैं तब आलम क़ुद्दूस में जा शामिल होती है। और हमेशा को बदनों से अलग हो रहते हैं। लेकिन वो रूहें जिनके कमाल में नुक़्स रहता है एक बदन से दूसरे बदन में इंतिक़ाल करती रहती हैं। और इस इंतिक़ाल का नाम नस्ख़ (نسخ) है। जब इन्सानी बदन से कोई आदमी अपनी हालत के मुनासिब हैवानी बदन में आता है। मसअला शुजाअ (बहादुर) आदमी मर कर शेर बन गया, या

बुज़दिला आदमी ख़रगोश बन गया, या अहमक़ आदमी मर कर गधा बन गया। तो ऐसी तब्दीली को मस्ख़ (مسخ) कहते हैं।

और जब ऐसी तब्दीली होती है तो अर्वाह मर्दुम नबातात बन जाती हैं तो इस तब्दीली को र्सख़ (رسخ) कहते हैं।

और जब किसी की रूह जमादात बन जाती है तो ये फ़स्ख़ कहलाता है। पस लफ़्ज़ तनासुख़ जो कि नस्ख़ से निकला है इस की तीन किस्में हैं। मस्ख़, रस्ख़ और फ़स्ख़ जब तक अर्वाह अपने कमालात इल्मिया और अख्लाक़िया को ना पहुंचें उनमें ऐसी ही तब्दीलीयां रहती हैं। और जब कमालात को पहुंचे तो तब आलम क़ुद्दूस में शामिल हो जाती हैं। इमाम फ़ख़्रउद्दीन राज़ी अपनी तफ़्सीर में लिखते हैं कि सुरह अनआम के रुकूअ चार 4 और आयत 38 में लिखा है कि :-

وَمَا مِن دَابَّةٍ فِي الْأَرْضِ وَلَا طَائِرٍ يَطِيرُ بِجَنَاحَيْهِ إِلَّا أُمَمٌ أَمْثَالُكُم

<u>यानी चौपाए और परिंदे जिस क़द्र दुनिया में मौजूद हैं ये सब तुम मुहम्मदियों की मानिंद उम्मतें हैं। यानी तुम मुसलमान एक उम्मत हो वैसे ही ये जानवर भी तुम्हारी मानिंद उम्मतें हैं।</u>

फिर सुरह फ़ातिर के 3 रुकूअ और आयत 24 में लिखा है कि :-

وَإِن مِّنْ أُمَّةٍ إِلَّا خَلَا فِيهَا نَذِيرٌ

<u>कोई उम्मत बाक़ी नहीं जिसमें ख़ुदा ने कोई डराने वाला यानी पैग़म्बर ना भेजा हो।</u>

अहले तनासुख़ कहते हैं कि आयत बाला में लफ़्ज़ इमसाल तमाम ज़ाती सिफ़ात मुसावात का मुक़तज़ी है और कि चौपाए और परिंदे भी हमारी मानिंद उम्मतें हैं। और बमूजब आयत दुवम के हर उम्मत में पैग़म्बर आया है तो अब जानवरों में भी पैग़म्बर आए होंगे। इसलिए जानवरों को ख़ुदा का और नेकी व बदी का इल्म हासिल होगा। क्योंकि उनके पैग़म्बरों ने उन्हें सिखलाया होगा। मैं कहता हूँ कि अगर लफ़्ज़ "कुम" (کم) से मुराद तुम इन्सान हो तो मतलब ज़ाहिर है कि तुम इन्सान हैवान की एक नुअ हो ऐसे तमाम जानवर अनवाअ हैं हाँ अगर लफ़्ज़ "कुम" (کم) से मुराद उम्मते मुहम्मदिया हो तो शायद अहले तनासुख़ का कुछ मतलब निकलेगा।

और वो जो मुहम्मद साहब ने कहा है, कि हर उम्मत में एक पैग़म्बर पहुंचाया गया है, ये कलाम-ए-हक़ के ख़िलाफ़ है। क्योंकि अगले ज़माने में ख़ुदा ने यहूद के सिवा सब क़ौमों को छोड़ दिया था। कि अपनी तमीज़ के मुवाफ़िक़ काम करें। उनके पास कुछ पैग़ाम नहीं पहुंचाया गया। लोगों ने अपने ख़यालात से जो सोचा किया और जो चाहा सौ बोला अगर ख़ुदा से सब क़ौमों में पैग़म्बर आते तो इस क़द्र इख़्तिलाफ़ ना होता जैसा अब देख रहे हैं। ये जुदाइयाँ और झगड़े और ईमानी इख़्तिलाफ़ात ख़ुदा के नज़ीरों के डाले हुए नहीं हैं, बल्कि ये आदमीयों की समझ से हैं। हाँ जब नजात का काम मसीह ने पूरा कर दिया तो तब नज़ीर सब क़ौमों में पहुंचाए गए हैं। ना सिर्फ नज़ीर बल्कि बशीर पस जानवरों में नज़ीरों का आना तो दरकिनार सारी दुनिया की क़ौमों में भी हादी ना आए थे सिर्फ यहूद में पैग़म्बर आए थे।

(फ) मैं नहीं समझता कि हमा औसत (بمہ اوست) में और तनासुख़ में क्या इलाक़ा है? सूफ़ी कहते हैं अज़ रुए तहक़ीक़ हमा ऐन अस्त ना ग़ैर व अज़ रोय ताय्युन हमा ग़ैर अस्त ना ऐन। (ہمہ عین است نہ غیر واز روئے تعین ہمہ غیر است نہ عین۔) पस तहक़ीक़ असल बात है और ताय्युन एक अम्र एतबारी है जो शख़्स महव हो गया है वो आलम-ए-बाला में पहुंचा तो क्या? और जो महव हुआ कीड़ों मकोड़ों में तो क्या दोनों ख़ुदा के अंदर तो रहते हैं। और अगर सुख है तो ख़ुदा को है और जो दुख है तो ख़ुदा को है। पस अपना तसव्वुफ़ ले कर घर जाओ वो किसी काम की चीज़ नहीं है। हम तो इस बात को मानते हैं कि अगर दुख है तो हमें है। जो सुख है तो हमें है। और जब हम ख़ुदा से मिलकर सुख में जाते हैं तो हम में और ख़ुदा में दूरी रहती है। कि हम इन्सान हैं, वो ख़ालिक़ है। वेद वालों ने भी जब हमा औसत (بمہ اوست) की ताअलीम दी थी, तो उन्हें तनासुख़ से डराना बेजा काम था।

हमा औसत (بمہ اوست) और तनासुख़ का ख़्याल यूनानी है और हिन्दुस्तानी है। क़दीम बुत परस्तों का ज़हनी ईजाद था। और हिन्दुस्तान के बाअज़ हिन्दुवों के दर्मियान ऐसा सरायत किए हुए है। जैसे बुतपरस्त मुसलमानों में तक़्दीर के ख़्याल ने सरायत की है। लेकिन वो इस तनासुख़ के ख़्याल का कुछ सबूत नहीं रखते सिर्फ यही कहना पड़ता है कि ऐसी किताबों में ऐसा लिखा हुआ है।

ये तो सच्च है उनकी किताबों में ऐसा लिखा हुआ है। मगर बहस इस में है कि आया तुम्हारी किताबें कहाँ से हैं? ख़ुदा से या आदमीयों से पस उमूर जेल पर बहस आ जाती है कि आया उनके मुसन्निफ़ कौन थे? किस ज़माने में थे? और किस तरह के अश्ख़ास थे? उनकी तहरीर से उनके दिलों और ख़यालों की क्या कैफ़ीयत मालूम होती है? सफ़ाई कहाँ तक थी? और मुबालग़ों की क्या कैफ़ीयत है? वो किताबें

तो मुबालग़ों और वाही तबाही ख़यालात से भरी हैं। इसलिए वो अहले अक़्ल के सामने ग़ैर-मोअतबर हैं, क्योंकि उन्हीं के ख़यालात ने जो इन किताबों में मर्क़ूम हैं उन्हें बातिल साबित किया है। पस उन किताबों के दर्मियान जो ग़ैर मोअतबर हैं। तनासुख़ का ज़िक्र सबूत तनासुख़ की दलील नहीं सकता।

हम मसीही जो बाअज़ उमूर की निस्बत ये कह दिया करते हैं, कि "ख़ुदा के कलाम में ऐसा लिखा है कि" हमारी उस बात का मानना इसलिए वाजिब समझा जाता है। कि हमने अव्वलन दीगर कुतुब में साबित कर दिया है कि वो किताबें कलाम-उल्लाह हैं। और मोअतबर ख़ुदा-परस्त और ख़ुदा तरस लोगों से लिखी गई हैं। और ख़ुदा ने अपनी क़ुदरतों से उस कलाम पर गवाहीयाँ दी हैं। और उस कलाम की सदहा ताअलीमात अक़्लन वाजिब-उल-ताअमिल ज़ाहिर हो गईं। फिर अगर कोई ताअलीम इस में ऐसी भी नज़र आ जाए जो ख़ुदा की ज़ात-ए-पाक से इलाक़ा रखती हो। और फ़हम इन्सानी से बुलंदो बाला हो तो सिर्फ़ कलाम में मज़्कूर होने के सबब से हम बग़ैर समझे जुर्आत और दिलावरी से अदब से क़ुबूल कर लेते हैं, और ये मुनासिब काम है।

हिन्दुवों और मुसलमानों को ऐसा कहना जायज़ नहीं कि ये बात क़ुरआन में या वेदों में शास्त्रों में लिखी है इसलिए हक़ है, क्योंकि वो अपनी किताबों को मिन-जानिब-अल्लाह (ख़ुदा की तरफ से) साबित नहीं कर चुके हैं, और ना कर सकते हैं। इसलिए जो दाअवे वो अपनी किताबों से लाएँगे। उस का सबूत उन्हें ख़ारिज (बाहर) से देना पड़ेगा।

और तनासुख़ हमा औसत (بمہ اوست) के लिए ख़ारिज में कोई दलील मौजूद नहीं है। तब उनके बे दलील दाअवों को इस बारे में हम क्योंकर क़ुबूल कर सकते हैं? तनासुख़ के लिए सिवाए उस दाअवे के जो ग़ैर-मोअतबर अश्ख़ास से हुआ है दलाईल इस्बातियाह महज़ माअदूमबी (गायब) हैं दलाईल इन्कारियाह ज़रूर मौजूद हैं। और कई एक हैं उनमें से तीन दलीलें ये हैं, जिनका ज़िक्र करता हूँ :-

1. जिस चीज़ का नाम नफ़्से नातिक़ा है। वो सिवा इंसान के किसी और हैवान में पाया नहीं गया। फिर क्योंकर कह सकते हैं कि एक ही रूह कभी इन्सान में और कभी हैवान में आती रहती है?

2. क़ुव्वत-ए-हाफ़िज़ा नफ़्से नातिक़ा की ज़ाती सिफ़त है ना कि आरिज़ी पस क्या सबब है? कि किसी आदमी को कुछ कैफ़ीयत तव्वुलुद और साबिक़ा जन्म की कैफ़ीयत मालूम नहीं है। आया इस कैफ़ीयत के नक़्श व निगार महव हो गए हैं

या दब गए हैं। महव तो हो नहीं सकते क्योंकि हाफ़िज़ा ज़ाती सिफ़त है हां दबे जा सकते हैं। मगर दबी हुई बात फिर याद आ सकती है। जब याद दिलाने वाली कोई चीज़ सामने आए। आदमीयों के सामने सब हैवान फिरते हैं, और उनके ख़साइस उन पर ज़ाहिर हैं। अगर वो आदमी कभी कोई जानवर थे। तो उनको इनके मुलाहज़ा से अपनी कैफ़ीयत साबिक़ा याद क्यों नहीं आती?

3. तनासुख़ का इंतिज़ाम ख़ुदा ने किस ग़रज़ से किया है? जवाब यही है कि सज़ाए आमाल के लिए हम पूछते हैं कि सज़ा ए आमाल क्या चीज़ है? बेफ़िक्र लोग इस बात को नहीं जानते दुनियावी अहकाम से जो सज़ा होती है। नासमझ लोग इलाही सज़ा को इसी के मुवाफ़िक़ ख़्याल करते हैं। मालूम हो जाये कि दुनियावी सज़ा मजाज़ी सज़ा है। ख़ुदा की तरफ़ से जो सज़ा है वह हक़ीक़ी सज़ा है। देखो जैद ने बक्र का लाख रुपया चूरा कर बिल्कुल बर्बाद कर दिया। अब बक्र जैद से कहता है कि मेरा रुपया मुझे दे दो वर्ना मैं तुझे किसी मीयाद के लिए क़ैद क़रा दूंगा और ख़ूब पिटवाउंगा। जैद कहता है कि जो चाहो सो करो मेरे पास तो देने के लिए कुछ नहीं है। पस बक्र ने जो कुछ कर सकता था करके सब्र किया जैद कुछ मीयाद तक दुख पाकर छूट गया। अब बतलाओ कि इस में बक्र का नुक़्सान क्योंकर पूरा होगा? और जैद क्योंकर ज़ुल्म से बुरी होगा? शायद सज़ा का मीयादी दुख और वो रुपया मुसावी चीज़ हों। मगर बतलाईए कि ख़ुदा की बेइज़्ज़ती किस मीयादी दुख के मुसावी है? इसलिए ख़ुदा की सज़ा ये है कि या तो कोड़ी कोड़ी अदा करो या अबद-उल-आबाद दुख में रहो। लाइन्तहा बरसों तक कभी सुख का मुँह ना देखो। ये सज़ा ख़ुदा की शान के मुनासिब है। और ज़ुल्म के भी मुनासिब है। तनासुख़ के दुखों में ये सज़ा क्योंकर पूरी हो जाती है? तनासुख़ में दुख किया है? कुछ भी नहीं। अगर गधे हैं तो गधे का काम करते हैं और ख़ुश हैं। और बिल्ले हैं तो मियाऊं मियाऊं में ख़ुश हैं। सज़ा क्या है? सज़ा के लिए ये भी ज़रूरी है कि मुजरिम अपने गुनाहों से आगाह हो कर दुख उठाए ताकि नादिम हो। और जाने कि मैंने फ़ुलां काम ग़ैर-मुनासिब किया था इसलिए दुख में हूँ। बतलाओ कि उन ग़रीब, नाचार, बीमार फ़ाक़ाज़दा और मसाइब कशीदा आदमीयों में और उन जानवरों में कौन आगाह है? कि मैं फ़ुलां जुर्म के सबब से इस हालत में हूँ। ये तो इलाही हिक्मत के इंतिज़ाम हैं। और हर जानवर अपनी फ़ित्री हालत में ख़ुश है, और तनासुख़ का ख़्याल ग़लत है।

ख़ुदा के पैग़म्बरों ने ख़ुदा से मालूम करके हमें यूं सिखलाया है कि हैवानात की रूहें फ़ानी हैं और सब हैवानात आदमीयों की ख़िदमत और ख़ुराक के लिए पैदा हुए हैं। नबातात में और इन में क़दरे फ़र्क़ है। और इनमें इन्सानी रूह हरगिज़ नहीं

है। इन्सान की रूह जो एक मख़्लूक़ शैय है, एक दफ़ाअ दुनिया में आती है। और जब वो मर गया बदन मिट्टी हो जाता है। और रूह उस की आलम-ए-ग़ैब यानी आलम-ए-अर्वाह में रहती हैं। अदालत के दिन तक सब रूहें वहां जमा रहेंगी और उनके लिए आसाइश या दुख हस्ब उनकी हालत के रहेगा। क़ियामत के दिन ख़ुदावंद येसू मसीह आएगा। और जहान की अदालत वही करेगा उसी को ख़ुदा बाप ने सारी अदालत सौंप दी है, क्योंकि वो अल्लाह इन्सान है। उस के सामने सब रूहें अपने बदनों में उठेंगे। और अदालत के बाद ईमानदार जिनका भरोसा मसीह के कफ़्फ़ारे पर है अबद तक ख़ुदा की रहमत में आराम से रहेंगे। और बेईमान अबदी दुख में चले जाऐंगे। फिर वहां से कभी नहीं छूट सकते और ये बात कि ख़ुदा एक जुदा शैय है। और इन्सान वग़ैरा जद्दी चीज़ें हैं, बराबर क़ायम रहेंगी। मुफ़रद व मुजर्रिद सब झूटे साबित होंगे। जब सज़ा का मुँह देखेंगे तो सारी तफ़रीद तजरीद भूल जाएगी। हाय हाय सूझेगी। अभी क़ब्रों का हलवा और रोटी खा कर मस्त हो रहे हैं और औसत के दम मारते हैं। वक़्त आता है कि औसत का पोस्त उतरेगा और मैं तू की सूझेगी।

सिवाए यसूअ इब्ने-ए-मरियम के हर एक आदमी पीर हो या पैग़म्बर गुनेहगार और अबदी सज़ा का मुस्तहिक़ है। क्योंकि सबने ख़ुदा की शराअ को तोड़ा। सबने नामुनासिब काम किए। सब बिगड़ी हुई जड़ की डालियां हैं सब दोज़ख़ की आग में जलने के लायक़ हैं लेकिन ख़ुदा ने मेहरबानी करके अदालत से पहले मसीह ख़ुदावंद को भेज दिया जिसने दुनिया में आकर सब अव्वलीन और आख़रीन यानी कुल बनी-आदम के लिए ईलाही कर्ज़ को अदा किया। और दुखों को उठाया। और सब के लिए शरीअत इलाही को पूरे तौर पर अमल में लाया फिर आम मुनादी कराई कि जो कोई इस पर ईमान लाए यानी उस के फ़ज़्ल को मंज़ूर और क़ुबूल करे और कहे कि मैं इस बात से राज़ी और ख़ुश हूँ कि तूने मेरा क़र्ज़ा अदा किया और मुझे बचा लिया। मैं अब तेरा ग़ुलाम हूँ सब बातों में तेरा फ़रमांबर्दार रहूँगा। तू आगे को भी मेरी मदद और हिमायत कर तो वो आदमी आइन्दा सज़ा से बच जाएगा। और जो वो कहे कि तू कौन है? मैं अदा किया हुआ क़र्ज़ क्यों मंज़ूर करूँ? तूने मेरा दुख क्यों उठाया? मैं आप अपना दुख उठाऊँगा। आप नेक-आमाल करके बचूंगा। मुझे यक़ीन भी नहीं आता कि तूने मेरा क़र्ज़ उठा लिया। फ़ुलां पीर या फ़ुलां पैग़म्बर मेरी शफ़ाअत करेगा। या ख़ुदा आप रहम करके मुझे बख़्श देगा। ऐसे आदमी को इख़्तियार है कि जिधर चाहे वो उधर जाये। और जो चाहे सो करे मुसलमान रहे या सूफ़ी बने या नेचरी हो। लेकिन याद रखें कि अबदी सज़ा में ज़रूर फंसा होगा। ख़ुदा उस पर कभी रहम नहीं करेगा। इसलिए कि उसने ख़ुदा के इंतिज़ाम और रहम को जो मसीह में उस के लिए हुआ था रद्द किया है। और मसीह ने जो उस का क़र्ज़ अदा किया है इस शख़्स ने अपनी रजामंदी इस बारे में अलग कर के अपने हक़ में इस अदा किए हुए कर्ज़ को

मंसूख़ कराया है। और अपने ऊपर बहाल रखवाया है अब ये ख़ुद क़र्ज़ा अदा करे या अबद तक दुख में रहे।

सारे गुनाहों की फ़हरिस्त अबद तक पेश-ए-नज़र रहेगी और सब हसरतों से बुरी हसरत ये होगी। हाय मैंने मसीह के फ़ज़्ल को रद्द करके अपने सारे गुनाहों के तदारुक को जो मुझे मुफ़्त हाथ आया था क्यों नादानी से क़ुबूल ना किया था। हाय मैंने मसीह को रद्द करके अपनी अबदी आसाइश को रद्द कर दिया और अब कुछ नहीं हो सकता रहम का दरवाज़ा अबद तक बंद हो गया अदालत का मुँह अबद तक चबाने को खुला है।

33 फ़स्ल सूफ़ियों की वो कैफ़ीयत जो अब है

जो कैफ़ीयत इल्म सुलूक और सालकीन की इस किताब में कुतुब तसव्वुफ़ से सुना चुका हूँ और इस का इब्ताल (गलत साबित करना) भी दिखला चुका हूँ वो कैफ़ीयत हाल के सूफ़िया में बरा-ए-नाम है बल्कि एक और कैफ़ीयत पैदा हो गई है। जो पहली कैफ़ीयत की बनिस्बत ज़्यादा-तर बुरी है।

शुरू में पहली कैफ़ीयत के लोग हिन्दुस्तान में ज़ाहिर हुए थे उनके चंद शागिर्द वैसे ही हो गए थे। मसलन मुईन उद्दीन चिश्ती, क़ुतुब उद्दीन बुख़्तियार काकी, फ़रीद उद्दीन मसऊद यानी बाबा फ़रीद, क़ुतुब जमाल उद्दीन अहमद हांसवी, निज़ाम उद्दीन औलिया, अलाउद्दीन साबिर, शाह अबू अलमाअनी, शाह अबूल्अला और सय्यद भीक वग़ैरा ये सब लोग पहली कैफ़ीयत के शख़्स थे।

उनके बाद ये कारख़ाना निहायत बिगड़ गया अब सिर्फ नाम के सूफ़ी फिरते हैं और वो जो उन में नामी हैं अक्सर ख़ानदानी पीर ज़ादे हैं। जिनका जद्दे आला कोई नामी सूफ़ी था। जिसका मज़ार कहीं कहीं आलीशान इमारत से बनाया और ख़ूब सजाया है क़ब्र पर उम्दा उम्दा ग़लाफ़ डाले हैं। फूलों और खो शबों से मुअत्तर किया है। रात को बहुत चिराग़ जलाते और अदब से ज़ियारत करते और कराते हैं। क़ब्र के क़दमों पर झुक कर बोसे देते हैं ख़ादिम या मुजाविर जो मुक़र्रर हैं। वो सफ़ाई रखते और मोर की दुम के परों से झाड़ूँ देते हैं। साल में एक-बार मौत की तारीख़ में मेला करते हैं। कसबियों का नाच होता है। जिस से वह पीर

साहब अपनी ज़िंदगी में बे-ज़ार थे। कव्वालों के राग दरवेशों के वज्द होते हैं। हूहक़ का नारा बुलंद होता है।

जाहिल मिन्नतें मानते नज़र नयाज़ रुपया पैसा कौड़ियाँ और क़िस्म क़िस्म के खाने मिठाई रेवड़ियां ख़ूब आती हैं मज़े उड़ते हैं। ख़ुदा को छोड़ दिया क़ब्रों को माबूद बना लिया है। जिस पीर ज़ादे के ख़ानदान में किसी बुज़ुर्ग का ऐसा मज़ार बन गया है उस के लिए तो दुनिया में एक जागीर पैदा हो गई है। वो ज़मीन-दारों से अच्छा रहता है। और कितने घराने इस क़ब्र से ख़ुराक हासिल करते हैं। सारा ख़ानदान इस मज़ार को मज़ार शरीफ़ कहता है। बल्कि इस शहर को भी इस मज़ार की वजह से शरीफ़ कहते हैं और रात-दिन मद्दाही में मसरूफ़ हैं। करामातें और क़ुदरतें इस मज़ार की निस्बत हमेशा तस्नीफ़ हो कर उड़ती रहती हैं देखो आजकल एक किताब निकली है जिस का नाम हक़ीक़त-ए-गुलज़ार साबरी[11] है। इस के मुसन्निफ़ ने बातिल रिवायतों के फ़रोग़ देने को बाअज़ किताबों के नाम भी दिल से फ़र्ज़ कर लिए हैं, कि ये बात मकतूब नताबि वग़ैरा में लिखी है। ना मकतूब नताबि वग़ैरा कोई चीज़ है और ना ही वो बात सहीह है सिर्फ गुलज़ार साबरी की बहार है।

मुहम्मदी मौलवी हमेशा चिल्लाते रहते हैं कि ऐ ज़ालिमों क्या करते हो। ये ना सूफ़ीय्यत है और ना इस्लाम है यह तो बुत-परस्ती है। मगर पीर ज़ादे कब मानते हैं। नालायक़ दलीलों से उनका मुक़ाबला करते और ऐसी बुरी निगाहों से उनको देखते हैं। जैसे मुतअस्सिब मोमिन काफ़िर को देखता है। पस हाल के सूफ़िया की एक तो ये सिफ़त है कि जिसका बयान हुआ। अफ़्सोस की बात है कि एडीटर उन अख़बारात जो अक्सर ब्रहमो और आर्यों और नेचरियों वग़ैरा की निस्बत कुछ लिखते रहते हैं। इन सूफ़ियों की तरफ़ से क्यों चुप हैं चुप रहने में इन हज़ारहा आदमीयों का नुक़्सान है। और छेड़ छाड़ में फ़ायदा है कि आदमी जगाए जाते हैं। लेकिन अदब और शाईस्तगी से कलाम करना मुनासिब है।

کچھ نہ کچھ چھیڑ چلی جائے ظفر گر نہیں وصل تو حسرت ہی سہی

कुछ ना कुछ छेड़ चली जाये ज़फ़र
गर नहीं वस्ल तो हसरदत ही सहीह

---

11 https://archive.org/details/HaqiqatGulzarSabriurdu

दूसरी बात इनमें ये है कि हर कोई किसी ना किसी पीर साहब का मुरीद है उस से शिजरा लिया है। और कुछ वज़ीफ़ा सीखा हाथ में तस्बीह ली जुमेअरात को ज़ियारत के लिए कुछ क़ब्रें इंतिखाब कीं सालाना उर्सों में बराबर हाज़िर हैं और कुछ कोशिश भी करते हैं। कि लोगों को मुतअक़्क़िद (बंधा हुआ, मजबूत किया हुआ) बना दें ताकि रुपया आए और इज़्ज़त से रहें ये मक़्सद ए आला अक्सरों का है।

मैं इन साहिबान से बमिन्नत कहता हूँ कि अगर तुम मुंसिफ़ आदमी हो तो आप ही इन्साफ़ से कहो कि ये तस्बीह और वज़ीफ़ा किस मतलब से है? क्या फ़ुतूहात और कुशाइश रोज़ी और दस्त-ए-ग़ैब और रुजूआत् और तस्ख़ीर-ए-क़ुलूब के वज़ीफ़े ढूंध ढूंढ कर तुमने अपने लिए इख़्तियार कर रखे हैं, या नहीं? और अपनी औलाद को भी सिखलाते हो कि नहीं? पस ये सर-परस्ती है या ख़ुदा-परस्ती है। तुम किस मुँह से कहा करते हो कि फ़ुलां शख़्स दुनिया हासिल करने के लिए मसीही हो गया है। क्या तुम ख़ुदा के तालिब हो और वो दुनिया का तालिब था? ख़ुदा से डरो सच्चा इन्साफ़ करो मैं तो मुद्दत दराज़ तक सूफ़िया में रहा। उनके घर के भेद से ख़बरदार हूँ। मैंने तुम में कोई कोई आदमी देखा जो ख़ुदा का तालिब था। अक्सर दुनिया के तालिब देखे और वही वज़ीफ़े तलाश करते रहे। जिनसे दुनिया हासिल हो दुनिया के तालिब ख़ुद हो दूसरों की निस्बत क्यों बदगुमानी किया करते हो? अगर तुम ख़ुदा के तालिब होते तो ज़रूर ख़ुदा को पाते वो अपने तालिबों को बे मुराद नहीं फिरने देता मैंने ये किताब ईज़ा रसानी के लिए नहीं मगर दिली मुहब्बत और दोस्ती का हक़ अदा करने के लिए लिखी है ताकि ख़्वाब-ए-ग़लफ़त से जगाऊँ।

तीसरी बात जो इनमें है ये है कि जब इन सूफ़िया ने देखा कि हम में ना कुछ क़ुदरत है ना तासीर है। और हम लोगों से कहते फिरते हैं कि हमारे गुज़श्ता बुज़ुर्ग ऐसी ऐसी क़ुदरत और तासीर के शख़्स थे। हम में कुछ तो होता कि इज़्ज़त रहे और हम भी साहब-ए-तासीर मशहूर हों। और जाहिल समझें कि क़ब्र वाले बड़े पीर की क़ुदरत हज़रत सज्जादा नशीन साहब में भी है। पस वो तावीज़ों और गंडों और फलतियों और फ़ाल और रमल और बाअज़ सिफ्ली जादों की तरफ़ माइल होते हैं बल्कि रात-दिन दुआ में मशग़ूल रहते हैं।

दो तीन उंगल का यक मुरब्बा काग़ज़ लेकर इस पर लकीरों से ख़ाने बनाते और ख़ानों में 2 व 4 और 8 वग़ैरा लिखते और जाहिलों को देते हैं, कि लो घोल कर पी लो या गले में डाल लो, तुम्हारी हिफ़ाज़त होगी। ये तावीज़ की सूरत है।

गंडों की ये सूरत है कि दो तीन बालिशत का कच्चा धागा सात तार का लेते हैं और और इस में सात गाँठें देते और गाँठ में अपने मुँह की हवा को मन्तर पढ़ कर बाँधते हैं। और कहते हैं कि लो अपने गले में बांधो बुख़ार नज़्दीक ना आएगा। और किसी चुड़ैल वग़ैरा की तासीर ना होगी। या भैंस के सींग में बांधो ख़ूब दूध देगी।

फलतियों की ये सूरत है कि जब कोई आदमी भूत का बीमार समझा जाता है तो पीर साहब काग़ज़ पर फ़रिश्तों के या पैग़म्बरों के नाम लिखते हैं। और बत्ती की मानिंद लपेटते हैं और कहते हैं कि उसे जला कर बीमार की नाक में धुआँ चढ़ाओ, ताकि उस का दिमाग़ ख़राब हो और वह कुछ बके और ये कहें कि फलीते की तासीर से भूत आया है वह बोलता है। और जो बीमार मज़बूत हो और इस धोईं से ना बके तो एक और फ़लीता लिखते और नीले चिथड़े में लपेटते हैं, जिसका धुआँ ज़्यादा घबरा देता है और जो वो इस से भी ना बके तो मिर्चें जला कर धुआँ देते हैं यहां तक वो बक उठता है। और कहते हैं कि हाँ अब भूत क़ाबू में आया है। अब मैं इस को जला दूंगा। चूल्हे में बैरी की लकड़ियाँ जलाओ उस पर कोरी हंडिया ख़ाली रखो और पास बैठ कर माश के दाने पर कुछ पढ़ते हैं। और हंडिया में डालते जाते हैं और आसतीन में एक बक्री का पित्ता जिसमें सुर्ख़ निरी का रंग भर लाते छिपा रहता है और मौक़ा पा कर फ़ौरन हंडिया में डालते हैं और कहते हैं कि लो भूत जल गया आओ उस का ख़ून देख लो अरे अहमक़ों रूह में ख़ून कहाँ से आ सकता है? फिर कहते हैं कि हंडिया को बाहर ले जा कर गहरे ग़ार में दफ़न कर दो कि भूत फिर से ना निकल आए और जल्द एक सफ़ैद जवान मुर्ग़, घी, चावल, मैदा और मेवा वग़ैरा लाओ कि उन फ़रिश्तों का नज़राना दूं जिन्होंने इस भूत को पकड़ कर जलाया है। और मुझे जो कुछ देना है वो जुदा नक़द दे दो। तब वो जाहिल ग़रीब देहाती जो तंग-दस्त होते हैं जिस तरह हो सकता है वो ये नज़राना देते और पीर साहब अपने घर में मुर्ग़ा पुलाव खाते और हँसते हैं।

फ़ाल की ये सूरत है कि एक किताब बना रखी है, जिसके अव्वल में एक सफे पर एक नक़्शा है हर ख़ाने में कोई हर्फ़ लिखा है जैसे कि अलिफ़, बे वग़ैरा और हर्फ़ का बयान किताब में कुछ लिखा है।

ग़रीब मुसीबतज़दा जाहिल औरतें अपनी तंगियों मैं चुप-चाप पीर साहब के पास हाज़िर होती और अपना दुख रोती हैं और पीर साहब फ़ालनामा यानी वही किताब निकालते और वो औरत नज़राना किताब पर रख देती है। तब फ़रमाते हैं कि अपनी उंगली किसी ख़ाना पर रख। जिस खाने पर वो उंगली रखी, उसी के

हर्फ़ का बयान किताब में से निकाल कर सुनाते हैं। अगर अच्छा बयान है तो फ़ाल मुबारक हुई और अगर बुरा बयान है तो औरत ग़मगीं हो गई, कि मेरे लिए ये आफ़त आएगी। तब कहते हैं कि यूं सदक़ा दो और यूं यूं करो बला दफ़ाअ हो जाएगी। बाज़ों ने रमल सीख लिया है। वो रमल से मिस्ल रावल जोगियों के कुछ बतलाते हैं। और यूं जनाब पीर साहब की बुज़ुर्गीयां ज़ाहिर होती हैं। ऐसी बातों में इस्लाम ज़िक्र का है।

ये तीन बातें जो मैंने यहां लिखी हैं उनमें से पहली बात गोया इन का सुलूक या सूफ़ीयत है। दूसरी बात में वो गोया तर्क सुलूक पूरे करते हैं। तीसरी बात में इनका उरूज है, जो कि उनकी सूफ़ीयत से हासिल हुआ है फ़क़त आख़िर में फिर कहता हूँ कि अगर ख़ुदा से मिलना चाहते हो तो बाइबल मुक़द्दस की तरफ़ देखो और दीन ए मसीही की कैफ़ीयत और माहीयत (असलियत) दर्याफ़्त करने के लिए कोशिश करो।

राक़िम बंदा : इमाद-उद्दीन लाहिज़